विद्यार्थी जीवन में सफलता

(STUDENTS' SUCCESS IN LIFE)

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडमी
(डिवाइन लाइफ सोसाइटी)
पो० शिवानन्दनगर,
जिला–टिहरी-गढ़वाल (यू०पी०) हिमालय

मूल्य] १९६५ [३ रू०

विद्यार्थी जीवन में सफलता

(STUDENTS' SUCCESS IN LIFE)

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडमी
(डिवाइन लाइफ सोसाइटी)
पो० शिवानन्दनगर,
जिला—टिहरी-गढ़वाल (यू०पी०) हिमालय

मूल्य] १९६५ [रू० ३

श्री १०८ स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशकीय

स्वामी शिवानन्द जी का नाम अध्यात्म ज्ञान के सम्यक् प्रचार का पर्याय बन गया है। तीन सौ से अधिक पुस्तकों के यशस्वी लेखक के रूप में इन्होंने मानवता की जो अन्यतम सेवा की है, वह आज जगजाहिर है। अनावश्यक साम्प्रदायिक बंधनों से मुक्त उनके उपदेशों में जनमानस को छू लेने की प्रभुता है। सर्वसाधारण के प्रति जागरूक रहते हुए भी वे नवयुवक समाज के लिए विशेष जागरूक प्रतीत होते थे। १९५० में अपनी अखिल भारत यात्रा में उन्होंने अनेक शिक्षालयों और विश्वविद्यालयों में उपदेश दिए और योगासनादि के प्रदर्शन की व्यवस्था की। आजकल के व्याख्याता की भाँति स्वामी जी सिर्फ इतना कह कर संतुष्ट नहीं हो लेते कि नवयुवक भावी राष्ट्र के निर्माता हैं—वे तो दिनरात श्रम करके इन्हें उचित दिशा में मोड़ने का यत्न करते रहे हैं। नवयुवकों का दिशानिर्धारण उनकी शिक्षा ही करती है। आज देश में जबकि शिक्षा से अध्यात्म-

ज्ञान को प्रक्षिप्त करके इसे शुष्क बना दिया गया है, शिवानन्द जी का साहित्य यहाँ पर दैवी वरदान का काम करता है। स्वामी जी से बढ़कर शायद ही किसी ने नवयुवक समाज को अपने परामर्श से उठाया हो। स्वामी जी ने नवयुवक समाज से यथेष्ट श्रद्धा प्राप्त की, कारण कि उनके उपदेशों में अहंभाव या महापुरुषत्व का दंभ नहीं था—वे सेवक और हितकांक्षी के रूप में कुछ कहते थे। उन्होंने जो कुछ भी कहा, बड़ा प्रभावशाली सिद्ध हुआ और नवयुवक समाज ने इन्हें जीवन में उतारने की कोशिश की। स्वामी जी का साहित्य सुन्दर, सौम्य और प्रकाशमान् है, यह दिव्य जीवन का उद्बोधक और अखिल मानव समाज का दिशानिर्देशक है।

प्रकाशक

शैशवावस्था से ही शिक्षा आरम्भ होनी चाहिए

बच्चों की शिक्षा राष्ट्र-निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है; क्योंकि लोकोक्ति है कि बालक जो कुछ पालने में सीखता है, अपने बचपन में जैसा स्वभाव बना लेता है, वह आजीवन बना रहता है। सदाचारशील तथा दैवी सम्पदाओं से सम्पन्न स्वस्थ, चतुर और बुद्धिमान् नवयुवक और युवती राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हैं, यही नहीं वास्तव में वे राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति हैं। वे नवयुवक और युवतियाँ जिन्हें अपने बचपन में ठीक शिक्षा मिली है, आगे चल कर सुयोग्य और कुलीन सन्तान को जन्म देंगी और उनकी यह सन्तान वयस्क होने पर राष्ट्र की प्रतिष्ठा और सम्मान को उन्नत करेंगी और उसके गौरव को बढ़ाएंगी।

मनुष्य के अन्तस्तल में जो दिव्य पूर्णता है उसको खोज निकालने की विधि का नाम ही शिक्षा है। सदाचार का विकास ही शिक्षा है और सदाचार ही शक्ति है। सदाचार ही मनुष्य को अमरत्व प्रदान करता है। नन्हें बालक और बालिकाओं में सदाचार का बीज बोना चाहिए;

क्योंकि उस समय भूमि उर्वर और कोमल होती है। पाश्चात् जीवन में यह कार्य बहुत ही दुष्कर हो जाता है; क्योंकि उस समय भूमि कठोर हो जाती है।

स्कूल तथा कालेजों में विद्यार्थी जो ज्ञान अर्जन करते हैं, वह ऐसा होना चाहिए जो उनके तथा दूसरों के जीवन में उपयोगी सिद्ध हो। शिक्षा-संस्थायें उपाधि प्रदान करने के कारखाने न बनें। शिक्षा विद्यार्थी को आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी, अध्यवसायी तथा सुसभ्य बनने में सहायक होनी चाहिए। वह उनमें आध्यात्मिक विकास के सही मूल्याङ्कन की भावना भरने वाली हो।

शिक्षा का आरम्भ बचपन से ही होना चाहिए। माँ की लोरी भी दिव्य एवं आत्मप्रेरक होनी चाहिए जो कि बच्चों में निर्भयता, मुदिता, शान्ति, निःस्वार्थता और दिव्यता के स्वस्थ आदर्शों का सञ्चार करे। भले ही बच्चा माँ के उन शब्दों के भाव हृदयङ्गम करने में असमर्थ हो; फिर भी माँ जिस बच्चे को अपने पूर्ण हृदय से प्रेम करती है उसकी ओर वह एकाग्रचित्त से जो शक्तिशाली विचार प्रवाहित करती है उसका गम्भीर प्रभाव उस बच्चे के मानसिक गठन पर तथा उसके भावी जीवन और आचार पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का पुनर्गठन अध्यापक और छात्र के पारस्परिक सम्बन्ध के आदर्श पर

होना चाहिए तथा समय की गति के अनुसार उसमें आवश्यक सुधार होने चाहिए। प्रत्येक बीस विद्यार्थी के लिए एक शिक्षक होना चाहिए और विद्यार्थियों के साथ शिक्षक का सम्पर्क बहुत ही घनिष्ट और सीधा होना चाहिए। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। साम्प्रदायिक भावनाओं से असम्पृक्त आध्यात्मिक शिक्षा ही शिक्षा का आधार होना चाहिए। इसके साथ ही उन विषयों का सामञ्जस्यपूर्ण समन्वय होना चाहिए जिन्हें वरिष्ठ शिक्षाशास्त्रियों की समिति पाठ्य क्रम में रखना आवश्यक समझे। शिक्षक का प्रथम कर्त्तव्य बालकों में उनके पाठ्य विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करना होना चाहिए; क्योंकि प्राय: यह देखा गया है कि स्कूलों में बालक और बालिकाओं को जिन विषयों की शिक्षा दी जाती है वे उनके भावी जीवन में बहुत ही कम उपयोगी सिद्ध होते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि उन्होंने स्कूल में जो कुछ पढ़ा है वह स्कूल छोड़ते ही तुरन्त भूल जाता है। किसी विषय की उच्चतर शिक्षा के लिए विद्यार्थियों का चुनाव रुचि और योग्यता के अनुसार करना चाहिए और उन्हें उस विषय की योग्यता प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

बच्चों की शिक्षा में उनकी माता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। बाल-शिक्षा केन्द्रों की महिला-अध्यापिकाओं का कार्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है। महिलाएं बच्चों के लिए जो कुछ कर सकती हैं, वह

पुरुष नहीं कर सकते हैं। स्त्री ही प्रथम गुरु है और भगवान् ने उसे अपना यह भाग अदा करने के लिए बहुत ही उपयुक्त बनाया है। बच्चों की शिक्षा के लिए उसका हृदय पूर्ण विकसित होता है। वह बच्चों के हृदय से बातचीत कर सकती है। बच्चा भी उसकी शिक्षाओं को सुगमता से ग्रहण कर आत्मसात् कर लेता है। बच्चा माँ में अधिक विश्वास रखता है। माँ बच्चे के हृदय को जीत लेती है। हृदय से दिए हुए हृदय के पाठ बच्चे के व्यक्तित्व में गम्भीरता से अङ्कित हो जाते हैं।

निस्स्वार्थ सेवाभावी संस्कृत एवं शिक्षित महिलाओं को अध्यापन का व्यवसाय अपनाना चाहिए। जिन महिलाओं का दृष्टिकोण स्वतन्त्र है तथा जो समाज सेवा करना चाहती हैं, उनके लिए अध्यापन व्यवसाय में विशेष क्षेत्र है। वहाँ वे वैसे ही सफल हो सकती हैं जैसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में पुरुष। वे अपने हृदय का विकास कर विश्वात्म चेतना प्राप्त कर सकती हैं। वे संसार के सभी बच्चों को अपना बच्चा मान सकती हैं। अब समय बदल चुका है। आज संसार को ऐसी महिलाओं की आवश्यकता है जिनमें आत्मसमर्पण की भावना हो और हो उनमें पुरुष-सा शौर्य एवं साहस। जिन महिलाओं में पुरुषोचित साहस और दृढ़ता तथा नारी-सुलभ करुणा और सूझबूझ है वे अद्भुत कार्य कर सकती हैं और योगिनी के रूप में विभासित हो सकती हैं।

शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण

ऋषियों तथा ज्ञानियों की भूमि भारत अभी भी अज्ञान के दलदल में फँसी हुई है। जनता में निरक्षरता अधिक है। प्राध्यापक, शिक्षक तथा विद्यार्थियों को चाहिए कि वे छुट्टियों में गाँवों में जा कर उनको शिक्षित बनावें। समृद्धशाली व्यक्तियों को उन्हें पर्याप्त सहायता देनी चाहिए। योरुप तथा अमरीका के साथ भारत की तुलना तो कीजिए। यहाँ पर निरक्षरों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

लड़के तथा लड़कियों के लिए राष्ट्रीय पाठ-शाला तथा महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय खुलने चाहिए। उनको सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए; तभी राष्ट्रीय भावना का जागरण हो सकता है। जो शिक्षा आपको धर्म तथा सत्य के मार्ग में प्रवृत्त करती है, जो आपके चरित्र का निर्माण करती है, जो आपको मुक्ति, पूर्णता तथा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में सहायता देती है तथा साथ ही साथ सच्चाई के साथ जीविकोपार्जन के लिए योग्य बनाती है, वही सच्ची शिक्षा है।

सेवा समिति तथा सांस्कृतिक संस्थायें देश के हर भाग में स्थापित होनी चाहिए। इनको सुचारु रूप से सञ्चालित करना चाहिए। इन संस्थाओं के द्वारा आत्मा तथा हृदय की सेवा करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। तब उसका हृदय शीघ्र ही शुद्ध हो जायगा।

संसार की सबसे अधिक अद्भुत मशीन है मनुष्य का शरीर। इसमें अनेक प्रणाली, अङ्ग और भाग हैं। यदि सभी प्रणाली, अङ्ग और भाग मिल कर काम करते हैं, यदि सभी भाग स्वस्थ अवस्था में हैं तब मनुष्य स्वास्थ्य-सुख का उपभोग करता है। यदि किसी एक भी प्रणाली, अङ्ग अथवा भाग में विकार उत्पन्न हुआ, यदि उनमें सामञ्जस्य नहीं है तब मनुष्य रोगी हो जाता है। इसी भाँति समाज अथवा राष्ट्र विभिन्न जातियों तथा व्यक्तियों के द्वारा बना हुआ है। हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना कर्त्तव्य सुचारु-रूपेण पालन करे। वह सबल तथा स्वस्थ हो जिससे कि उसके अपने कर्त्तव्य का पालन हो सके। अन्यथा राष्ट्र अथवा समाज दुर्बल हो जाता है और उसका पतन तथा ह्रास होने लगता है।

केवल जवानी के जोश से ही काम न चलेगा। आपके अन्दर सच्चा प्रेम और सेवाभाव होना चाहिए। आपके कण-कण में शुद्ध प्रेम का स्पन्दन होना चाहिए। यदि आपके अन्दर इस प्रकार की भावना का अभाव है तो मानव-सेवा के द्वारा अधिकांश रूप में इसको विकसित कीजिए। महान् ऋषियों और सन्तों के जीवन को बारम्बार पढ़िए। इन लोगों ने धर्म के लिए अपने जीवन को अर्पित कर दिया था। कुछ वर्ष तक किसी अच्छे नेता के अधीन रह कर काम कीजिए। उनकी सेवा कीजिए। उनका सम्मान कीजिये। उनकी आज्ञा का

ान कीजिए। आज्ञाकारिता त्याग से बढ़ कर है।
प उनके सद्‌गुणों तथा दिव्य चेतना को अपने अन्दर
एंगे। स्वयं नेता बनने का प्रयास न कीजिए।
द हर व्यक्ति नेता बनना चाहेगा तथा हर व्यक्ति
देश देना चाहेगा तो आन्दोलन कभी सफल
हीं हो सकता। सेवा करना सीखिए। आप देश
ा धर्म की सच्ची सेवा कर सकते हैं।

बाल-विवाह एक बहुत बड़ी सामाजिक बुराई
। बच्चे ही बच्चे पैदा कर रहे हैं। भारत शक्ति-
न लोगों से भरा पड़ा है। विधवाओं की संख्या
दजनक है। बाल-विवाह बन्द होने चाहिए और
हेज़ प्रथा पर कठोर प्रतिबन्ध होने चाहिए।

जगत् को स्वस्थ माताओं, स्वस्थ तथा सबल
ड़के और लड़कियों की आवश्यकता है। आज
म भारत में क्या देख रहे हैं। जिस देश में भीष्म,
ाण, अर्जुन, अश्वत्थामा, कृपा, परशुराम तथा
नेक वीर योद्धा उत्पन्न हुए थे वही देश आज
बलों, पुरुषत्वहीन व्यक्तियों से भरा हुआ है। स्वा-
थ्य के नियम की उपेक्षा तथा अवहेलना हो रही
। राष्ट्र कष्ट भोग रहा है। जगत् को अनेकानेक
ाहसी आध्यात्मिक शूरवीरों की, सदाचारशील
ैनिकों की आवश्यकता है जो अहिंसा, सत्य,
स्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन पाँच सद्‌गुणों
ा सम्पन्न हों। जिनमें स्वास्थ्य और बल हो, जिनमें
उपरोक्त पाँचों सद्‌गुण विद्यमान हों तथा जिनको कि

आत्म-ज्ञान प्राप्त हो, वे ही सब का सच्चा कल्याण साधन कर सकते हैं।

हमारे ग्रेजुएट (स्नातक) युवक व्यवसाय तथा कृषिपक्ष की अवहेलना न करें। उन्हें अपने व्यक्तिगत और सामुदायिक प्रयासों से अपने खेतों की उत्पादिका शक्ति में वृद्धि लानी चाहिए। इस दिशा में, कृषि तथा व्यवसाय के क्षेत्र में, उनको बहुत सा काम करना है। दफ्तर में केवल बाबू बनने के स्थान में वे अपनी स्वतन्त्र जीविका चला सकते हैं। सुन्दर स्वास्थ्य और बल के लिये आवश्यक शुद्ध दूध तथा मक्खन आदि वस्तुयें दे कर वे जनता की सेवा कर सकते हैं।

देशी पदार्थों को ही उपयोग में ला कर उन्हें कुटीर उद्योग की उन्नति करनी चाहिए। इससे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। सुखी और शान्तमय जीवन के लिये आर्थिक स्वतन्त्रता अपरिहार्य है।

मानव जीवन के विविध पहलुओं का सम्पूर्ण विकास ही शिक्षा है। जीवन के हर क्षेत्र में पूर्णता लाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। जीवन के विभिन्न अवस्थाओं और स्तरों पर सार्वभौमिक नियम को बाह्य तथा अन्तर्जगत् में अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना ही सच्ची शिक्षा की जाँच है।

—स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय
सद्गुण

पंचम अध्याय
शिक्षा

षष्ठ अध्याय
स्वास्थ्य और व्यायाम

परिशिष्ट

क्षात्र, आध्यात्मिक साहित्य और शिवानन्द

—:०:—

प्रथम अध्याय

जीवन का ध्येय

१. जीवन का ध्येय

मानव जीवन का ध्येय आत्मसाक्षात्कार अथवा
रम शान्ति, सुख, आनन्द तथा अमरत्व की प्राप्ति
। शान्ति एक जड़ अकर्मण्यावस्था नहीं है और
तो यह मन की अभावावस्था ही है। यह तो
ाध्यात्मिक उपलब्धि की धनात्मक अवस्था है।
ह आपका केन्द्र, आदर्श तथा ध्येय है। सुख और
ाश्वत आनन्द की संवाहिका शान्ति की शक्ति
ापूर्व ही है।

हलचल, उपद्रव, संघर्ष तथा विवादों का
ाभाव ही शान्ति नहीं है। हो सकता है कि आप
ण विषम परिस्थिति में पड़े हुये हों। आप

कीजिये। उसके लिये प्रार्थना कीजिये जिसने आपको हानि पहुँचाई है। उसके प्रति तथा समस्त संसार के प्रति शान्ति एवं शुभेच्छा की विचार-तरंगों को प्रेषित कीजिये।

यदि आप स्वार्थ, लोभ तथा अभिमान का उन्मूलन कर लेंगे तो प्रकृति आपके लिये काम करेगी। वैयक्तिक इच्छा सामष्टिक इच्छा के साथ एक बन जायगी। आपका लक्ष्य ब्रह्मांड के लक्ष्य के साथ एक बन जायगा। आपके लिये सब कुछ सुलभ हो जायगा। आपके मार्ग में कोई बाधा न रहेगी। आप चिन्ता, उद्वेग, उत्तरदायित्व तथा भय से मुक्त रहेंगे।

धनी जनों के पास अपार सम्पत्ति होती है। उनके पास भोग-विलास के सभी साधन होते हैं। उनके पास सुन्दर मोटर कार, भव्य प्रासाद तथा अनेक सेवक होते हैं। वे विविध प्रकार के पौष्टिक तथा सुस्वादु भोजन खाते हैं तथा ग्रीष्म-काल में पार्वतीय भागों में निवास करते हैं। फिर भी उनके मन में शान्ति नहीं; क्योंकि उनके भीतर समता नहीं है। लोभ, स्वार्थ, अहंकार, काम, मद,

घृणा, क्रोध, भय और शोक के कारण उनके हृदय में संघर्ष चलता रहता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर ही शक्ति रखता है। वह दूसरों को प्रभावित कर सकता है। वह लाखों व्यक्तियों में शान्ति तथा सुख को विकीर्ण कर सकता है। वह दूसरों को प्रबुद्ध बना सकता है। वह दूर-स्थित मित्रों में भी अपने सशक्त आत्मप्रेरक लाभदायी विचारों को भर सकता है; वह ईश्वर की ही प्रतिमूर्ति है। जीवनहीन पदार्थ है ही नहीं। प्रत्येक वस्तु में जीवन है। पत्थर के टुकड़े में भी जीवन है। पदार्थ जीवन से पूर्ण है। पुष्पों के साथ मुसकराइये तथा वृक्षों की कोपलों तथा शाखाओं से हस्तालिंगन कीजिये। हरी घास के साथ बातें कीजिये। पक्षियों तथा मृगों के साथ खेलिये। इन्द्रधनुष, पवन, नक्षत्र, सूर्य, कलस्विनी सरिताओं तथा सागर की चंचल तरंगों के साथ प्रेमालाप कीजिये। अपने पड़ोसी, कुत्ता, बिल्ली, गाय, मनुष्य, वृक्ष और फूल—सबों के साथ मित्रता स्थापित कीजिये; तभी आपका जीवन विशाल, निष्कलंक तथा पूर्ण होगा। यह अवस्था अनिर्वचनीय है। आप श्रेष्ठतम शान्ति,

सुख तथा आनन्द अनुभव करेंगे।

हे करुणामय आराध्यदेव! हमें शाश्वत शांति, पवित्रता तथा शक्ति प्रदान कीजिये जिससे कि हम अपने देश तथा समस्त मानव जाति की सेवा करें! हम सब संसार में मंगल तथा एकता के हेतु आत्मत्याग की भावना से एक साथ मिलकर शांतिपूर्वक कार्य करें! हममें प्रज्ञापूर्ण क्षमाशील हृदय, विशाल सहनशक्ति तथा यथाव्यवस्था का गुण हो! हमें वह नेत्र प्रदान कीजिये जिससे हम सर्वत्र आत्मा की एकता के ही दर्शन करें!

२. जीवन का लक्ष्य

बहुसंख्यक लोगों का, यहाँ तक कि शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों का भी जीवन में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। फल यह होता है कि वे लोग इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, जैसे लकड़ी का कुन्दा समुद्र में चपल तरङ्गों के साथ निरवलंब इधर-उधर भटकता है। उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है। बहुत से विद्यार्थी अपनी बी. ए. और एम. ए. की पढ़ाई समाप्त कर लेते हैं; पर आगे

क्या करना होगा, इसका उन्हें पता ही नहीं होता। अपनी प्रकृति के अनुसार किसी अच्छे उद्यम को चुनने की शक्ति उनमें नहीं है जिससे कि वे अपने जीवन को समृद्ध तथा सफल बना सकें। अतः वे साहसिक कार्य अथवा किसी ऐसे कार्य को, जिसमें कुशलता, चतुराई तथा कुशाग्रबुद्धि की आवश्यकता है, करने में अयोग्य सिद्ध होते हैं। इस भाँति उनका समय नष्ट होता जाता है और सारा जीवन उदासी, निराशा और दुःख में बीत जाता है। उनके पास शक्ति है, बुद्धि भी है, पर कोई निश्चित लक्ष्य या ध्येय नहीं, कोई अपना आदर्श नहीं और न जीवन का कोई कार्यक्रम ही है। इसीलिये उनका जीवन असफलता का प्रतीक-सा बन जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति को प्रथमतः अपने जीवन के लक्ष्य का उचित ज्ञान होना चाहिये। उसके अनन्तर कार्य करने का एक ऐसा ढंग निकालना चाहिये, जो अपने ध्येय की सफलता के अनुकूल हो। लक्ष्य तक पहुँचने के लिये कठिन परिश्रम तो अवश्य करना ही होगा, साथ-साथ अपना आदर्श भी निश्चित होना चाहिये और जीवन में हर क्षण

उसी आदर्श के अनुसार कर्म करना चाहिये। आप अपने लक्ष्य को अभी प्राप्त कर लें अथवा लड़-खड़ाते हुये पग से चलकर दस वर्ष बाद प्राप्त करें; किन्तु अपना एक आदर्श और लक्ष्य अवश्य होना चाहिये, तभी आप संकल्प का विकास कर सकते हैं।

३. आत्म-संशय

बहुत से लोग सदा आत्मसंशयी बने रहते हैं। उनमें आत्मविश्वास का अभाव होता है। वे शक्ति, योग्यता तथा अन्य गुणों से सुसम्पन्न रहते हुये भी संशयात्मा रहते हैं। अपनी योग्यताओं और क्षमताओं पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं होता कि सफलता मिल भी सकेगी या नहीं। यह एक ऐसी दुर्बलता है जिसके कारण मनुष्य अपने सभी प्रयासों में असफल रहता है। बहुत लोगों में भाषण की शक्ति और योग्यता रहती है। भाषा तथा भाव—दोनों पर उनका पूर्ण अधिकार होता है। परन्तु उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि वे व्याख्यान दे सकेंगे अथवा नहीं। उनका यही विचार होता है कि वे व्याख्यान नहीं दे सकेंगे। जब उनके मन में यह असत् विचार आता है तो उनका हृदय दहल जाता है, वे थरथर

कांपने लगते हैं और मंच से नीचे उतर आते हैं। आप में कार्य करने की क्षमता तो होनी ही चाहिये, परन्तु उसके साथ ही आप में यह पूर्ण विश्वास भी होना चाहिये कि आप अपने प्रयास में अवश्य ही सफल होंगे। कुछ लोगों में योग्यता कम होती है। उनके पास जोरदार मसाला भी नहीं होता। फिर भी वे अपने श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध सा कर देते हैं। आत्मविश्वास का ऐसा प्रभाव है। आत्मविश्वास एक प्रकार की शक्ति है। यह इच्छा-शक्ति का विकास करता है। आत्मविश्वास आधी सफलता ही है। आत्मविश्वासी व्यक्ति सदा ही सफल होते हैं।

४. संकोच तथा लज्जा

संकोच-रूपी निर्बलता को यदि जीवन की सफलता के मार्ग का रोड़ा कहा जाय तो अनुचित न होगा। संकोच या लज्जा और कुछ नहीं, यह केवल कायरता अथवा भय का साधारण रूप है। छोटी आयु के सभी बालकों में यह दुर्बलता पाई जाती है। लज्जा स्त्रीत्व प्रधान गुण है। यह व्यक्ति में तभी अपना अधिकार स्थापित करती है, जब वह कुछ गलत काम कर बैठा हो, अथवा गलत

मार्ग पर चल रहा हो। संकोची बालक अपने विचारों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं कर पाते। वे किसी अनजान व्यक्ति से खुलकर मिल नहीं सकते। सुशीलता का लज्जा से कोई सम्बन्ध नहीं है। सुशीलता तो सतीत्व या शुद्धता का प्रतिरूप है। जब चरित्र निर्मल हो जाता है, जब स्वभाव में नैतिकता आ जाती है तो सुशीलता का प्रकटीकरण होता है। लज्जा एक बड़ी बाधा है। इसका निराकरण साहस के विकास से करना चाहिये।

५. समाजपटुता

समाजपटुता या बेधड़क स्वभाव उस व्यक्ति में पाया जाता है, जिसमें नाम के लिये भी कर्म-संकोच नहीं होता। जो लोग लजालु होते हैं, वे समाजपटु नहीं कहे जाते। समाजपटु व्यक्ति सदा अग्रगामी रहता है। हर जगह हवा की तरह पहुँच जाना उसका स्वभाव है। कुछ डाक्टर और वकील धनोपार्जन नहीं कर पाते हैं, केवल इसलिये कि उनमें समाज के साथ चलने की कला का अभाव है। निःसन्देह वे बुद्धिमान् और चतुर भी हैं, किन्तु उनका दुर्भाग्य, जो वे संकोच के कारण

बेधड़क स्वभाव से कार्य नहीं कर पाते हैं। समाज-पटु व्यक्ति खोजपूर्ण होता है। वह निर्भीक तथा साहसी होता है।

समाजपटु व्यक्ति दूसरों के हृदय पर अधिकार पाने और उसको प्रभावित करने की कला में निपुण होता है। दूसरों की आवश्यकतानुसार सेवा करके वह उनका विश्वासपात्र बन जाता है। यदि उसके पास काम भी नहीं रहता तो वह अपने आप किसी न किसी कार्य की सृष्टि कर लेता है। चुपचाप बैठे रहना मानो उसके लिये सम्भव है ही नहीं। कभी भी उसे देखिये, वह योजनायें बनाता रहेगा। भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों के अनुकूल अपने को ढालने में वह कुशल होता है।

यूरोपियनों में हमने इस गुण को प्रचुरता से देखा है। अंगरेज लोग भारत में पहले पहल व्यापार करने के लिये आये थे और उन्होंने उसके लिये ही ईस्ट-इंडिया-कम्पनी खोली थी। किन्तु धीरे-धीरे समाजपटुता के कारण ही वे इस भूमि के शासक बन गये। जापान के लोग भी इस विद्या में निपुण हैं। यही कारण है कि पिछले महायुद्ध

के बावजूद भी आज वे अपने पावों पर उठ खड़े हो रहे हैं। वे वाणिज्य तथा व्यवसाय में संसार के बड़े से बड़े राष्ट्रों से लोहा लेने की क्षमता रखते हैं। समाजपटुता सभी व्यक्तियों के लिये एक आवश्यक गुण है।

६. व्यक्तित्व

जिस माध्यम द्वारा एक व्यक्ति को दूसरे से अलग-अलग जाना जाता है, उसे व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के चरित्र, प्रतिभा, सद्गुण, सदाचार, बौद्धिक विकास, प्रभावशाली चरित्र, मधुर तथा ओजपूर्ण वाणी का समावेश है। इन सब गुणों या विशेषताओं के समूह को किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व कहा जाता है। यदि केवल शारीरिक लक्षणों को लेकर ही व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाय तो वह अपूर्ण ही रहेगा।

यदि हम किसी व्यक्ति को दूसरे पर अपना प्रभाव डालता हुआ देखते हैं तो यही कहते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व तेजस्वी और आकर्षक है। पूर्ण सिद्ध योगी तथा पूर्ण प्रतिष्ठ ज्ञानी इस संसार में सबसे महान् व्यक्तित्व है। ऐसे

व्यक्ति का शारीरिक गठन साधारण पुरुषों के समान भी हो सकता है। उसकी आकृति असुन्दर भी हो सकती है। उसके वस्त्र फटे-पुराने हों ; किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी वह महान् व्यक्तित्व सम्पन्न होता है। वह एक महात्मा है। यम और नियम के अभ्यास से जिस व्यक्ति ने नैतिक उन्नति कर ली है उसका व्यक्तित्व तेजस्वी हो जाता है। वह लाखों को प्रभावित कर सकता है। धनी व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी प्रभावुक होता है। उनके व्यक्तित्व में प्रभावशालिता का कारण धन की शक्ति है।

रही चरित्र की बात। चरित्र से जिस व्यक्तित्व की प्राप्ति होती है, वह व्यक्तित्व ठोस और शक्ति-शाली होता है। चरित्रवान् व्यक्ति जहाँ कहीं रहें, सम्मानपात्र बनकर रहते हैं। जो व्यक्ति पवित्र-मना, सत्यशील, सत्यवादी, दयालु, उदार हृदय, है, वह दूसरों को शीघ्र ही प्रभावित करता और दूसरों के आदर का पात्र भी जल्दी ही बन जाता है। सात्विक गुण होने से मनुष्य दिव्य व्यक्तित्वशाली हो जाता है। जो व्यक्ति सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो, समाज में उसकी देवतुल्य प्रतिष्ठा होती है।

ऐसा व्यक्ति एक ही शब्द क्यों न मुँह से निकाले, उसका अपना अलग, विशिष्ट और महान् प्रभाव तथा आकर्षण होता है। यहाँ पर यह याद रखिये—यदि आप अपने व्यक्तित्व को उच्च, तेजस्वी, प्रभावशाली, आकर्षक बनाना चाहते हैं तो सर्व-प्रथम चरित्र का निर्माण कीजिये। चरित्र निर्माण में सबसे पहले और सबसे आवश्यक है ब्रह्मचर्य। इसे मूल ही क्यों न मान लिया जाय? इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं हो सकता।

व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इसके लिये दिव्य गुणों का अभ्यास अनिवार्य है। हतप्रभ और चिन्तित व्यक्ति किसी को भी प्रभावित नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति जो निराशावादी, उदास और हतप्रभ है, समाज के लिये रोग—संक्रामक कीटाणु के समान है। दूसरे के साथ कैसे मिलना और कैसे व्यवहार करना—इसका ज्ञान होना आवश्यक है। धीरे से बोलना चाहिये, मन को प्रियकर ही बोलना चाहिये। सज्जनता, मिलनसार स्वभाव और नेक आदत का विकास करना चाहिये तथा दूसरों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। नम्रता वह सद्गुण है

जो दूसरों के हृदय पर अपनी छाया कर दे है। इसके साथ यदि सुन्दर आकृति हो, मधु वाणी हो, कला और विज्ञान का अच्छा ज्ञान तो व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाते हैं।

जब किसी व्यक्ति से मिलना हो तो मिल का ढंग जान लेना चाहिये। किस प्रकार बातें व जाती हैं और कैसा व्यवहार किया जाता है- यह सब अच्छी तरह जान लेना चाहिये। व्यवहार कुशलता एक अनिवार्य सद्गुण है। दम्भी, हठी आत्मन्य व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी भी तेजस्वी तथा आकर्षक नहीं हो सकता। सभी उसे नापसन्द करते हैं।

स्वभाव सदा खुशदिल होना चाहिये। चेहरे पर मुसकान और आनन्द खिला रहना चाहिये। इससे व्यक्तित्व का विकास होता है। सदा प्रसन्न-चित्त रहोगे तो बड़े लोग आपको अच्छा मानेंगे। किन्तु प्रसन्न-चित्त और सतत मुसकान के साथ-साथ मिलनसारिता तथा विनीत स्वभाव भी होना चाहिये। यदि यह गुण हुये तो मिलने वाले व्यक्ति को प्रभावित किया जा सकता है। उस व्यक्ति से जो कुछ कहना है धीरे-धीरे अच्छी तरह सोच-

विचार और याद कर कहो। कहते समय जल्द-बाजी और अव्यवस्थित होने के कारण कुछ और न कह जाओ। सोच-समझ कर और धीरे-धीरे बात करोगे तो वह व्यक्ति ध्यानपूर्वक आपकी बातें सुनेगा। बातचीत करते समय उत्तेजित न हो जायँ और न घबड़ायें ही। विवाह बारात में जिस प्रकार गैसबत्ती की रोशनी का वाहक सन्नद्ध खड़ा रहता है, उसी प्रकार अकड़ कर खड़े न रहिये। तात्पर्य यह है कि बातें करते समय हाव-भाव इस प्रकार से व्यवस्थित होने चाहिये कि सुनने वाले का हृदय आपके व्यवहारों से मोहित हो जाये।

यदि व्यक्तित्व प्रभावुक है तो समझ लीजिये कि वह आपकी स्थायी सम्पत्ति है। यदि आप इसे पाने के लिये कृतकर्म हो जायं तो सफलता के यशभागी बनेंगे। तेजस्वी व्यक्तित्व के द्वारा नाम और यश, धन और सफलता के फूलों का मुकुट प्राप्त कीजिये।

—:•:—

द्वितीय अध्याय

संकल्प-साधना

१. संकल्प-साधना

विद्यार्थियों को अपने संकल्प की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। आत्मबल को ही संकल्प कहा जाता है। संकल्प का शुद्ध और अप्रतिहत अभ्यास किया जाय तो अद्भुत कार्य भी सिद्ध कर लिये जा सकते हैं। बलवती इच्छा वाले व्यक्ति के लिये इस संसार में कोई भी प्राप्तव्य असम्भव नहीं है। वासना से संकल्प अशुद्ध और निर्बल हो जाता है। एक-एक इच्छा यदि वश में कर ली गई तो संकल्प बन जाती है। कामशक्ति, मांसल शक्ति, क्रोधादि शक्तियों पर जब अधिकार प्राप्त कर लिया

आता है तो वे संकल्प में विलीन हो जाती हैं। इच्छायें जितना ही कम हों, संकल्प उतना ही बलवान होता है। मनुष्य के अन्दर जितनी प्रकार की मानसिक शक्तियां हैं यथा निर्णय-शक्ति, स्मृति-शक्ति, प्रज्ञा, धारणा-शक्ति, तर्क-शक्ति, विवेक-शक्ति, अनुमान-शक्ति, प्रतिभिज्ञा-शक्ति—ये सभी संकल्प-शक्ति के काम करने पर पलक मारते ही काम करने लग जाती हैं।

ध्यान का नियमित अभ्यास, सहिष्णुता, घृणा, अप्रसन्नता और चिड़चिड़ाहट का दमन, विपत्तियों में धैर्य, तपस्या, प्रकृति-विजय, तितिक्षा, दृढ़ता तथा सत्याग्रह—ये सब संकल्प के विकास को सुगम बनाते हैं। धैर्यपूर्वक सब की बातें सुननी चाहिये। इससे संकल्प का विकास होता है तथा दूसरों के हृदय को जीता जा सकता है।

विषम परिस्थितियों की शिकायत कभी न कीजिये। जहाँ कहीं आप रहें और जहाँ कहीं आप जाँय अपने लिये अनुकूल मानसिक जगत् का निर्माण कीजिये। सुख और सुविधाओं के उपलब्ध होने से आप मजबूत नहीं बन सकेंगे। विषम और अनुपयुक्त वातावरण में यदि आप

जा पड़ें तो वहाँ से भाग निकलने का प्रयत्न न कीजिये। भगवान् ने आपकी त्वरित उन्नति के लिये ही आपको वहाँ रख छोड़ा है। अतः सभी परिस्थितियों का सदुपयोग कीजिये। किसी भी वस्तु से अपने मन को उद्विग्न न होने दीजिये। इससे आपकी संकल्प-शक्ति का विकास होगा। किसी भी स्थान में और किसी भी अवस्था में अपने को प्रसन्न रखने की चेष्टा कीजिये। आपके व्यक्तित्व में इससे बल और तेज उतरेगा।

मन की एकाग्रता का अभ्यास संकल्प की उन्नति में अति सहायक है। मन का क्या स्वभाव है; इसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लीजिये। मन किस तरह इधर-उधर घूमता है और किस तरह अपने-अपने सिद्धांतों को प्रतिपादन कर दिया करता है—यह सब भली भांति हृदयंगम कर लीजिये। मन के चलायमान स्वभाव को वश में करने के लिये आसान और प्रभावकारी तरीकों को खोज निकालना होगा। व्यर्थ की बातचीत सदा के लिये त्याग देनी चाहिये। प्रत्येक को समय के मूल्य का ज्ञान होना चाहिये। संकल्प में तेज तभी निखरने लगेगा, जब समय का उचित उप-

योग किया जाय। व्यवहार और दृढ़ता, लगन और ध्यान, धैर्य और अप्रतिहत प्रयत्न, विश्वास और स्वावलंबन आपको अपने सभी प्रयासों में सफलता प्राप्त करायेंगे।

आपको अपने संकल्पों का व्यवहार योग्यतानुसार करना चाहिये। अन्यथा संकल्प क्षीण हो जायगा, आप हतोत्साह हो जायेंगे। अपना दैनिक नियम अथवा कार्य-व्यवस्था अपनी योग्यता के अनुसार बना लीजिये और उसका सम्पादन नित्यप्रति सावधानी से कीजिये। अपने कार्यक्रम में पहले पहल कुछ ही विषयों को सम्मिलित कीजिये। यदि आप अपने कार्यक्रम को अनेकों विषयों से भर देंगे तो न उसे निभा सकेंगे और न लगन के साथ दिलचस्पी ही ले सकेंगे। आपका उत्साह क्षीण होता जायगा। शक्ति तितर-बितर हो जायगी। अतः आपने जो कुछ करने का निश्चय किया है, उसका अक्षरशः पालन प्रतिदिन किया जाना चाहिये।

विचारों की अधिकता संकल्पित कार्यों में बाधा पहुँचाती है। इससे भ्राँति, संशय और दीर्घसूत्रिता का उदय होता है। संकल्प की तेजस्विता में ढीला-

पन आ जाता है। अतः यह आवश्यक है कि कुछ समय के लिये विचार करो और तभी निर्णय करो। इसमें अनावश्यक विलम्ब नहीं करना चाहिये। कभी-कभी सोचते तो हैं पर कर नहीं पाते। उचित विचार और उचित अनुभवों के अभाव में ही यह हुआ करता है। अतः उचित रीति से सोचना चाहिये और उचित अनुभव ही करने चाहिये; तभी संकल्प की सफलता अनिवार्य है। किन्तु केवल संकल्प ही किसी वस्तु की प्राप्ति में सफल नहीं होता। संकल्प के साथ निश्चित उद्देश्य को भी जोड़ना होगा। इच्छा या कामना तो मानस-सरोवर में एक छोटी लहर सी है; परन्तु संकल्प वह शक्ति है जो इच्छा को कार्य रूप में परिणत कर देती है। संकल्प निश्चय करने की शक्ति है।

जो मनुष्य संकल्प-विकास की चेष्टा कर रहा है, उसे सदा मस्तिष्क को शान्त रखना चाहिये। सभी परिस्थितियों में अपने मन का सन्तुलन कायम रखना चाहिये। मन को शिक्षित तथा अनुशासित बनाना चाहिये। जो व्यक्ति मन को सदा सन्तुलित रखता है तथा जिसका संकल्प

तेजस्वी है ; वह सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करेगा।

अनुद्विग्न मन, समभार, प्रसन्नता, आन्तरिक बल, कार्य सम्पादन की क्षमता, प्रभावुक व्यक्तित्व, सभी उद्योगों में सफलता, ओजपूर्ण मुखमण्डल, निर्भयता आदि लक्षणों से पता चलता है कि संकल्पोन्नति हो रही है।

२. विचार-साधना

इस मानसिक कारखाने में अनिश्चित और नाना प्रकार के विचार आते हैं और चले जाते हैं उन विचारों में न तो कोई क्रम है और न एकता ही। न तो उनमें कोई ताल है और न उनका कोई कारण ही। न उनमें किसी प्रकार का मेल या संगठन है न तरीका और न शिष्टाचार। सभी विचार व्यर्थ, गोलमाल और अस्त-व्यस्त हैं। विचारों में स्पष्टता नहीं है। आप किसी एक विषय को नियमित और क्रमबद्ध रूप से दो मिनट के लिये भी नहीं सोच सकते हैं। आपको विचारों और मानसिक क्षेत्र के नियमों का ज्ञान ही नहीं है। आपके अन्दर पाशविकता का संग्रह है।

विषयी मन में प्रवेश करने के लिये सभी प्रकार के कामुक विचार आपस में लड़ रहे हैं और एक विचार दूसरे विचार पर विजय पाने की चेष्टा में सतत प्रयत्नशील हैं। इन्द्रियां अपने-अपने विचारों को मन में घुसाना चाहती हैं। आंखें सुन्दर दृश्य देखना चाहती हैं। कान संगीत का आनन्द लेना चाहते हैं। अधिकांश लोगों के मन में क्षुद्र, विषयी, घृणापूर्ण द्वेषमय और वीभत्स विचारों का साम्राज्य है। वे दिव्य विचारों को एक क्षण के लिये भी अन्दर प्रवेश करने का अवसर नहीं देते। उनके मन का ढांचा ही इस प्रकार का है कि मानसिक शक्ति विषय-वासना की ओर ही ओर दौड़ती है।

प्रत्येक व्यक्ति का सोचने, समझने और काम करने का अपना-अपना तरीका है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार और समझ में अन्तर होता है। यही कारण है कि प्रायः मित्रों में अनबन हो जाया करती है। कामुक विचार, घृणा की भावना, द्वेष और स्वार्थ के विचार—मन में विकारों का रूप धारण कर लेते हैं, जिनके कारण बुद्धि और समझ में विकार आ जाता है, स्मरण-शक्ति या

ह्रास होने लगता है और मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

विचार एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक जाते और पहुँचते हैं। विचारों से मनुष्य प्रभावित होता है। शक्तिपूर्ण विचार वाला व्यक्ति निर्बल विचार वाले व्यक्ति को जल्दी प्रभावित कर सकता है। मानसिक संक्रमण द्वारा योगी लोग संसार के किसी भी हिस्से के किसी भी व्यक्ति के पास अपने विचार पहुँचा सकते हैं। मानसिक संक्रमण प्राचीन योगियों की विद्युत् वेग से शब्द या विचार भेजने की क्रिया है।

व्यक्ति के मानसिक कारखाने से क्रोध या घृणा का विचार लोगों की ओर बाण संधान करता है, व्यक्ति को हानि पहुँचाता है, विचार-जगत् में विरोध और फूट फैलाता है और फिर भेजने वाले के पास ही लौटता है और उसको भी चोट पहुँचाता है। यदि मनुष्य विचार की शक्ति और उसके प्रभाव को समझ ले तो वह अपने विचारों के निर्माण में बहुत ही सावधान हो जायगा। अच्छा मनुष्य यदि अपने मित्र से दूर

द्वारा सहायता पहुँचा सकता है। सच तो यह है कि अपने अंदर किसी भी दुर्विचार को प्रश्रय नहीं देना चाहिये। सदा अपने विचारों का निरीक्षण कर, व्यर्थ और न्यून विचारों को दूर हटाया जाय और मानसिक शक्ति की सुरक्षा की जाय। व्यर्थ की चिन्ता से शक्ति ही नष्ट होती है।

आपको अवश्य ही मानसिक संयोग, सम्बन्ध और क्रमिक नियमों का ज्ञान रखना चाहिये। जब आप किसी एक विषय के सम्बन्ध में सोच रहे हों तो दूसरे विचार या विचारों को मन में घुसने न दीजिए। जब आप गुलाब के फूल के सम्बन्ध में सोचते हों तो केवल गुलाब के फूलों के विषय में सोचते जाइये। किसी इतर विचार को मन में आने ही न दीजिए। तात्पर्य यह कि एक ही विचार में पूर्णतया दत्तचित्त रहिए। सदा सुन्दर पवित्र विचारों को प्रश्रय दीजिये। विचारों की उच्छृङ्खलता को नष्ट कीजिए।

स्मृति का विकास अत्यन्त आवश्यक कार्य है। स्मृति उन्नत होने से भगवत्साक्षात्कार में भी सहायता मिलती है। स्मृतिहीन व्यक्ति अपने प्रयास में सदा असफल रहता है। भुलक्कड़ व्यक्ति

बार-बार भारी भूलें करता है। स्मृति-सम्पन्न विद्यार्थी सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता है। जिसकी स्मरण-शक्ति तीव्र है, जो चीजों को बहुत दिनों तक याद रख सकता है, वह अपने सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करता है, उसका व्यवसाय सफलता पूर्वक चलता है। स्मृति का नवमांश बुद्धि है।

स्मृति का विकास करने के लिए अधीन सचेतन मन के कार्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। अधीन सचेतन मन में ही अधिकांश मानसिक कार्यों का प्रतिपादन होता है। प्राचीन काल में संस्कृत के विद्वान् वेदों को मुखाग्र कर लेते थे। शिक्षा की उस गुरुकुलीय प्रणाली में एक विशिष्ट सौन्दर्य था; वह सौन्दर्य था स्मृति-शक्ति को अप्रत्याशित सीमा तक विकसित करने की क्षमता। गुरुकुलीय प्रणाली के आधार पर शिक्षा देने से विद्यार्थी की स्मृति-प्रतिभा को पूर्ण बल मिलता है। इस दृष्टिकोण से आज के विश्वविद्यालय के छात्र प्राचीन विद्यार्थी समुदाय की बराबरी नहीं कर सकते।

स्मृति-प्रतिभा के विकास के लिये ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। खान-पान में सुचर्या का पालन

और इन्द्रियों का संयम धारणा-शक्ति के विकास में अति आवश्यक समझा जाता है। वीर्य, बुद्धि तथा चित्त का घनिष्ट सम्बन्ध है। वीर्य के रूप में जीवन-शक्ति के पतन हो जाने से स्मृति का लोप होने लगता है। आज के स्कूल तथा कालेज के नवयुवक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं समझते हैं। वे अविद्या के अन्धकार में भटकते रहते हैं। उनका समय उपन्यास पढ़ने में ही व्यतीत हो जाता है। उनके मानस-पटल नग्न चित्रों तथा अश्लील प्रसंगों से भरे रहते हैं। अनेक मार्गों से उनकी विषय-वासना उभरती रहती है। वे मनमाना भोजन करते हैं। भोजन का मन और शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है—यह तथ्य उनकी समझ में आता ही नहीं। यही कारण है, जिससे वे लोग जीवन में असफलता पाते हैं, निराश तथा दुःखी होकर अन्धकारमय जीवन व्यतीत करते हैं।

रुचि और एकाग्रता से स्मृति का विकास होता है। डाक्टरों को चिकित्सा कोष में उल्लिखित औषधियों का खूब स्मरण रहता है; क्योंकि वे रोगों की चिकित्सा में पर्याप्त दिलचस्पी लेते हैं। किन्तु राजनीति के विषय को याद रखना उनके

लिये सम्भव नहीं ; क्योंकि इस ओर उनकी रुचि नहीं है। वकील को ही देखिये, वह न्याय के सभी विधानों को याद रखता है। किन्तु उससे क्रिकेट मैच की बात पूछिये, वह कुछ भी नहीं बतला सकेगा ; क्योंकि इस ओर उसकी दिलचस्पी नहीं है।

जिस विषय को आप याद रखना चाहते हैं, उसमें रुचि पैदा करने का प्रयत्न कीजिये, तब स्मृति स्वयं उस विषय का प्रकाशन करेगी। दूसरी बात यह कि सभी विषयों को याद रखने के लिये उन सभी विषयों में रुचि उत्पन्न करनी होगी और लगभग सभी का साधारण ज्ञान भी प्राप्त करना होगा। प्रत्येक के मन में अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति बनने की महती आकांक्षा होनी चाहिये। आप भी प्रतिभाशाली बनने का प्रयास करें। शक्तिशालिनी स्मरण-शक्ति, तेजस्वी संकल्प तथा धारणा और ध्यान के नियमित अभ्यास से आप निश्चय ही प्रतिभाशाली व्यक्ति बन जायेंगे।

स्वस्थ मनुष्य की स्मरण-शक्ति अच्छी होगी। दुबले-पतले और कोमल शरीर वाले मनुष्य की स्मृति खराब होगी। स्वस्थ शरीर स्मृति की उन्नति में अपना सहयोग देता है। इसीलिये उचित भोजन,

व्यायाम और विश्राम से उत्तम स्वास्थ्य, साहस और वीर्य-शक्ति की प्राप्ति कीजिये। वे मनुष्य वास्तव में बहुत ही भाग्यशाली हैं; जो अपनी स्मृति का विकास करते हैं। वे इहलौकिक सफलता के साथ ही साथ भगवत् साक्षात्कार भी प्राप्त करते हैं; क्योंकि भगवान् की स्मृति बनाये रखना उनके लिये सुगम होता है। लोग प्रायः बहुत असावधान रहा करते हैं। उनमें महान् वस्तुओं को सीखने और ज्ञान के संचय करने की रुचि नहीं रहती है। हमारे देश में करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं, जो अपना नाम तक नहीं लिख सकते हैं। भारत जो बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली ऋषियों और प्रबुद्ध साधुओं का देश रहा है, आज अमरीका तथा अन्य देशों की तुलना में पूर्ण अज्ञान से भरा हुआ है। लंदन और पेरिस का एक साधारण बालक, जो गलियों में झाड़ू लगाता तथा जूतों पर पालिश करता है, राजनीति से खूब परिचित रहता है, अखबार पढ़ता है और बहुत से सार्वजनिक विषयों पर बुद्धिमत्ता पूर्वक बहस कर सकता है। अत. वे देश सभ्य तथा उन्नत हैं। भारत के बहुसंख्यक लोग अज्ञान और अन्धकार के दलदल में फँसे हुये हैं। इसका मूल कारण असावधानी, अभिरुचियों का अभाव तथा उदासीनता है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये, योग्य डाक्टर या वकील या सफल व्यापारी बनने के लिये नेत्रों और कर्णों को बहुत सीमा तक विकसित करना होगा। अन्धा या गूँगा या बहरा व्यक्ति समाज का अभिशाप ही नहीं मृतक भी है। ज्ञान की प्राप्ति कहो या धन की—दोनों के लिये आँखों, कानों और वाणी का अवलम्बन चाहिये। इन्द्रियाँ ही ज्ञान और धन संचय करने के लिये आयतन मानी जाती हैं।

राह चलते समय बहुत सतर्क रहना चाहिये। रास्ते में जो कुछ सुनते हो, देखते या पढ़ते हो, याद रखने की चेष्टा करते जाओ। इस प्रकार निरीक्षण-शक्ति का विकास भी होता रहेगा। बहुत ही सावधान रहिये। ध्यान से निरीक्षण में सहायता मिलती है। उत्कंठा की शक्तियों को भी कार्य में परिणत कीजिये। उत्कण्ठा कुछ दिनों के उपरान्त इच्छा के रूप में बदल जायगी। रुचि और ध्यान स्वतः आ जायेंगे। यदि कोई बात उपयोगी तथा रोचक है तो उसे अपनी दैनन्दिनी में नोट कर लीजिए। समय-समय पर दैनन्दिनी

दुर्गुण

१. क्रोध

रजोगुण तथा तमोगुण के प्राबल्य होने पर मानस-सरोवर में जिस वृत्ति का प्रादुर्भाव होता है, उसी का नाम क्रोध है। जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अप्रसन्न होता है तब अन्तःकरण से क्रोध की भावना उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में यह इच्छा या काम-वासना का ही रूपांतर है। जिस प्रकार दूध का रूपांतर दही में हो जाता है, उसी प्रकार इच्छा ही क्रोध का रूप धारण कर लेती है। यह शांति, ज्ञान और भक्ति का प्रबल शत्रु है। सभी प्रकार की बुराइयाँ तथा सारे दुर्गुण

क्रोध से ही उत्पन्न होते हैं। जब व्यक्ति की इच्छा पूरी नहीं होती और जब कोई उस इच्छा की पूर्ति के मार्ग में रोड़ा बन कर खड़ा हो जाता है, तो क्रोध का आवेश व्यक्ति की रग-रग को प्रभावित कर देता है। इच्छा क्रोध के रूप में बदल जाती है। क्रोधावेश द्वारा प्रभावित हो जाने पर वह हर प्रकार के नृशंसात्मक कार्य करता है। उसकी स्मृति का विलोप हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और प्रतिभा कुण्ठित। क्रोधावेश में मनुष्य हत्या करता है। भावुकता और उद्रेक से वह पागल-सा हो जाता है। क्रोध आ जाने पर व्यक्ति मुँह से क्या-क्या नहीं निकालता, क्या-क्या अपशब्द नहीं बोलता? वह जो कुछ चाहता है, कर बैठता है। एक कटु शब्द अन्त में युद्ध और मारपीट की नौबत ले आता है। वह उस समय अपनी विचार-शक्ति खो बैठता है; क्योंकि वह क्रोध के वश में होता है।

जल-भुन जाना, आग बबूला होना, आवेश, चिढ़ जाना, दिमाग का गरम होना—ये सब क्रोध के रूपान्तर हैं। प्रत्येक की तीव्रता विशेष अनुपात

सुधारने के लिये क्रोध प्रकट करता है, तो उसमें स्वार्थ का पुट नहीं होता, अतः उसे उचित क्रोध कहा जाता है। मान लीजिए कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करते हुए लोगों द्वारा रोका जाता है, उस समय उन लोगों को जो क्रोध आता है, उसे रोष कहा जाता है। यह बुरा नहीं है। केवल स्वार्थ-सहित और लालचजन्य क्रोध अनुचित है। कभी-कभी अध्यापक को अपने विद्यार्थी को ठीक मार्ग पर लाने के लिये थोड़ा क्रोध करना पड़ता है। अन्दर से तो वह शांत रहता है पर बाहर से केवल विद्यार्थी के कल्याणार्थ क्रोधित। यह अनुचित नहीं है। उसके लिए ऐसा करना आवश्यक है। उसके अन्तःकरण पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। पर यह सावधानी रखनी चाहिये कि वह क्रोध देर तक न रहे; अन्यथा उसका अंकुर अन्तःकरण में जम जायगा। जिस प्रकार समुद्र की लहरें आती और विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सुधार साधन के रूप में क्रोध आ भी जाय तो उसको तुरन्त रोक देना चाहिये।

थोड़ी-थोड़ी सी बातों के लिये यदि क्रोध आ जाता है तो मानसिक दुर्बलता के लक्षण प्रत्यक्ष

जान लीजिये। जब कोई व्यक्ति आपका अपमान करता है, आपको गालियां सुनाता है और आपके वस्त्र भी खोल लेता है और यदि आप फिर भी शांत और निर्लिप्त रह सकें तो जान लीजिये कि आपकी आंतरिक शक्ति प्रबल है; क्योंकि आत्म-नियन्त्रण और आत्म-संयम मानसिक सबलता का सूचक है। जो जल्दी-जल्दी आपे से बाहर हो जाता है, वह सदा ही अन्याय-पथ का अनुसरण करता है और उद्रेकों तथा भावनाओं की धारा में बहने लगता है।

बार-बार दुहराने से क्रोध को बल मिलता है। यदि तत्क्षण ही उसका दमन कर दिया जाय तो व्यक्ति को मानसिक शक्ति उपलब्ध होती है। जब क्रोध-वासना को वश में कर लिया जाता है तो वह आध्यात्मिक शक्ति के रूप में त्रिलोक विजयिनी शक्ति बन जाती है। क्रोध करने से शक्ति का अपव्यय होता है। क्रोध से स्नायविक केन्द्र व्यथित हो जाते हैं; आंखें लाल, शरीर संकुचित, हाथ और पांव कांपने लगते हैं। क्रोध से भरे हुए व्यक्ति को वश में करना अति दुष्कर है। तत्काल के लिए इसमें शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है तथा वह बहुत तेजस्वी हो जाता है।

किन्तु बाद में उसकी प्रतिक्रिया होती है और वह निराश-सा हो जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार सभी रोग क्रोध के ही रूप-रूपांतर हैं। एक बार क्रोध आ जाने से उसकी प्रतिक्रिया के टालने में महीनों लग जाते हैं।

वीर्य-क्षय की अतिशयता क्रोध का कारण होती है। काम-वासना मूल है तो क्रोध उसका तना। अतः मूल का उन्मूलन ही पहले करना होगा। कामोन्मूलन करने से क्रोध का तना अपने आप गिर जायगा। बहुधा देखा गया है कामी व्यक्ति ही जल्दी-जल्दी आपे से बाहर हो जाता है। ब्रह्मचारी को क्रोध पीड़ित नहीं कर सकता। उसका मन सदा शांत रहता है।

इसका मूल कारण खोजने पर तह में केवल अज्ञान और अहंकार ही मिलेगा। क्षमा, प्रेम, शान्ति, करुणा और मित्र भाव से क्रोध का दमन किया जा सकता है। इनका प्रयोग करते ही क्रोध का वेग कम होने लगता है। क्रोध पर विजय पाने का अर्थ है काम पर विजय पाना। क्रोध पर विजय पाने से मन पर विजय हुई मानी जाती है। मनुष्य कब क्रोध के आवेश में आ जायगा, यह

कह सकना कठिन है। साधारण-सी बात के लिये मनुष्य क्रोध के दुर्दम्य आवेश में आ जाता है। जब क्रोध गम्भीर रूप धारण करता है तो उसका दमन दुःसाध्य हो जाता है। इसलिये हमें चाहिये कि आरम्भ में ही, जब क्रोध चित्त में बीज के रूप में हो, उसका दमन कर दिया जाय। बड़ी सावधानी से मन पर नियन्त्रण किया जाना चाहिये। ज्यों ही मन में क्रोध के आविर्भाव के लक्षण प्रकट हों, त्यों ही उसे रोक देना चाहिये। प्रारम्भ में तो नहीं, परन्तु कुछ समय के बाद अभ्यास हो जाने पर क्रोध का दमन आसानी से किया जा सकता है। सावधान तथा सतर्क रहिये।

जब कभी यह प्रतीत होने लगे कि क्रोध आने वाला है, उसी समय बोलना बन्द कर मौन धारण कर लीजिये। प्रतिदिन एक या दो घण्टे मौन का अभ्यास कीजिये। सदा मधुर और अच्छे शब्दों का प्रयोग कीजिये। तर्क भले ही प्रबल हों, किन्तु शब्द तो मृदुल होने ही चाहिये। इसके विपरीत यदि शब्दों का चयन अच्छा नहीं किया गया तो कभी भी झगड़े की सम्भावना रहती है। सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा तलवार जैसी होती है।

यदि देखो कि क्रोध पर विजय पाने की सम्भावना नहीं है तो तुरन्त स्थान से हट जाइये। खूब दूर तक घूम आइए। कुछ ठंढा जल तुरन्त पी लीजिये। इससे शरीर और मन को शीतलता पहुँचती है। सबसे अच्छा तो यही है कि अपने क्रोध का कारण खोजिये और उसे दूर करने का प्रयत्न कीजिये। यदि कोई व्यक्ति गाली देता है तो आप क्रोधित हो जाते हैं। आपको क्यों क्रोध आता है, जब वह आपको 'कुत्ता' या 'गधा' कह कर सम्बोधित करता है? उसके कहने से क्या आपके पूँछ निकल आई या चार पाँव निकल आये? तब आप एक छोटी-सी बात के लिये क्यों दिमाग गरम करते हैं? इस प्रकार क्रमिक अभ्यास से आप में मानसिक शक्ति का विकास होगा और एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब आप किसी प्रकार के वातावरण से प्रभावित न होंगे। किसी प्रकार का कठोर या अश्लील सम्बोधन आपको प्रभावित नहीं कर पाएगा। यदि कोई व्यक्ति आपसे कहे कि अमुक व्यक्ति आपकी निन्दा कर रहा था तो आप उस पर किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न देंगे। आप उसे हँस कर टाल देंगे। कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब क्रोध को

शीघ्र प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे अवसरों पर भी शान्त रहना चाहिये। भूख तथा रोगग्रस्त अवस्था में क्रोध का आना आसान होता है। कुछ दुःख आ जाने, व्यापार में हानि पहुँचने या किसी चीज के खो जाने से लोग छोटी-छोटी बातों पर भी झुंझला उठते हैं। धूम्रपान, मांसाहार और मद्य-पान व्यक्ति को चिड़चिड़ा बना देता है। अपनी संगति का ध्यान भी अवश्य रखिये। दुराचारी व्यक्ति का संग न कीजिये। कम बोलिये और कम मिलिये। सबसे प्रेम कीजिये और सबके प्रति दयालु बनिये।

—:o:—

२. भय

भय, चिन्ता और क्रोध मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों का ह्रास करते, उसे दुर्बल बनाते और अकाल ही काल-कवलित बनाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी भय से भयभीत रहता है। भय अनेकों रूप धारण कर प्रकट होता है। नैपाली सिपाही तलवार, भाले, बरछी या गोलियों से नहीं डरते, परन्तु बिच्छू से बहुत डरते हैं। शिकारी जंगल में शेर या व्याघ्र से भय नहीं खाता, किन्तु शल्य-चिकित्सक के छोटे से अस्त्र से कांप

उठता है। सीमान्त प्रदेश के निवासी चाकू से नहीं डरते, शल्यचिकित्सक बिना क्लोरोफार्म के उनकी अंतड़ियों की चीर-फाड़ कर सकता है; किन्तु सांप से बेहद डरते हैं। कुछ लोग भूतों से भय खाते हैं। अधिकांश जनता सामाजिक आलोचनाओं से भय खाती है। कुछ लोगों को रोग का भय बना रहता है। स्वस्थतम व्यक्ति को भी किसी न किसी रोग की आशंका बनी रहती है।

राजा को शत्रुओं का, पण्डित को वादी का, सुन्दरी को वृद्धावस्था का, वकील को न्यायाधीश और असामी का, विद्यार्थी को अपने शिक्षक का, मेंढक को सर्प का और सर्प को नेवले का भय सदा बना रहता है।

भय की मात्रा होती है; जैसे साधारण भय, बुजदिल स्वभाव, लज्जा, चौंक, आशंका और तीव्र भय। भय तीव्र हुआ तो शरीर से पसीना टपकने लगता है, मल-मूत्र का स्खलन तीव्रता से होता है, मन की अवस्था काष्ठवत् हो जाती है, तीव्र आघात पहुँचता है और मनुष्य निश्चेष्ट-सा हो जाता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और आँखों में रूखापन

छा जाता है। कभी-कभी हृदय की गति बन्द हो जाने से मृत्यु भी हो जाती है।

अभिभावकों और शिक्षकों को बचपन से ही बालकों में निर्भयता के संस्कार डालने चाहिये। चूँकि उनका मन लचकदार होता है, इच्छानुसार बनाने का प्रयत्न बचपन से ही करना चाहिये। उन्हें महाभारत की कहानियाँ पढ़ने के लिये देना चाहिये, जिनमें भीम, अर्जुन तथा अन्य योद्धाओं के शौर्य का वर्णन है। ब्रह्मचर्य प्रचुर शक्ति और साहस प्रदान करता है।

—:o:—

२. घृणा

संसार में आज सर्वत्र ही घृणा का प्रभाव छा रहा है। सच्चे प्रेम का अभाव है। पुत्र पिता से घृणा करता है, अतः विष का प्रयोग कर पिता का प्राणान्त कर पैत्रिक सम्पत्ति को शीघ्र हथियाना चाहता है। स्त्री अपने पति को विष देकर मार डालती है और दूसरे धनी नवयुवक से शादी कर लेती है। भाई-भाई अदालतों में मुकदमा लड़ रहे हैं। बालकों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ मानव सेवा की भी शिक्षा दी जानी चाहिये।

विश्वप्रेम की आवश्यकता पर पूरा बल देना चाहिये, तभी शुद्ध प्रेम का विकास तथा घृणा का उन्मूलन सम्भव हो सकता है। आपको सच्चे हृदय से घृणा के निराकरण का प्रयास करना चाहिये। प्रेम का विकास कर घृणा, ईर्ष्या तथा असहिष्णुता पर विजय प्राप्त कीजिये। व्यक्ति, सम्प्रदाय तथा राष्ट्र में अशांति तथा उनके पारस्परिक कलह का कारण केवल घृणा और ईर्ष्या की पिशाच-वृत्ति ही है। ईर्ष्यालु व्यक्ति जब अपने पड़ोसी को समृद्ध होते हुए देखता है तो उसका दिल जलने लगता है। यही अवस्था राष्ट्रों और विभिन्न जातियों की है। ईर्ष्या का परिहार महानता और विशाल चरित्र से किया जाता है। नम्रता के विकास से घमण्ड का परिहार करना चाहिये। निष्कपटता तथा सरलता के विकास से घमण्ड का तथा क्षमा, प्रेम और सेवा-भाव के विकास से क्रोध का उन्मूलन करना चाहिये।

—:०:—

४. निराशावाद

निराशावाद मन की वह अवस्था है जिसमें वह किसी भी वस्तु के सदात्मक पक्ष को भूल कर उसके अन्दरूम अवगुणों को ही देखा करता है।

इस सिद्धांत के अनुसार इस संसार में दुःख ही दुःख है; इसमें सुख का लेश मात्र भी नहीं है। यह जीवन का नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण है। बुद्धमत निराशावाद का प्रतिपादन करता है। वेदान्ती यद्यपि संसार को असत्य बतलाते हैं, फिर भी वे पूर्ण आशावादी हैं। सांसारिक क्षुद्र भोगों से मनुष्य को हटाने तथा अमर आत्मा के जीवन के प्रति उनकी रुचि उत्पन्न करने के लिये ही वैराग्य का उपदेश दिया जाता है। आशावाद निराशावाद की प्रतिपक्षी भावना है। आशावादी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के सत्य पक्ष को ही पहले देखेगा। निराशावादी मनुष्य सदा उदास, निर्बल, सुस्त तथा चिन्तित रहता है। प्रसन्नता का तो उसे पता ही नहीं। निराशावाद एक संक्रामक रोग है। जिस घर में एक मनुष्य भी निराशावादी हुआ, वह घर सारे का सारा निराशावादी हो जाता है। निराशावादी व्यक्ति को इस संसार में सफलता नहीं मिल सकती। सबल आशावादी बन कर आनन्द का उपभोग कीजिये। जीवन की प्रत्येक अवस्था में खुशदिल रहिये।

५. विश्वासान्धता

कुछ लोगों का विश्वास अन्धा होता है। वह जल्दी ही दूसरों से छले जाते हैं। बिना सोचे-विचारे किसी बात पर विश्वास करना ठीक नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव को अच्छी तरह पहचान कर ही विश्वासपात्रता निश्चित करनी चाहिये। व्यक्ति का स्वभाव, गुण, पूर्व जीवन वृत्त और चाल-चलन—यह सब बातें जब अच्छी तरह जान ली जायें, तभी उसकी बातों पर विश्वास करना चाहिये। इसके लिये उस व्यक्ति की परीक्षा ली जानी चाहिये। जब तक आप पूरी तरह सन्तुष्ट न हो जायं, उस पर पूर्ण विश्वास न कीजिये। कुछ लोग बड़े गम्भीर होते हैं; किन्तु बाहर से बड़े सीधे दिखलाई पड़ते हैं और अन्त में धोखा देकर चल देते हैं। ऐसे लोगों का गम्भीर अध्ययन करना चाहिए। व्यक्ति अपने स्वभाव को अधिक काल तक गुप्त नहीं रख सकता। मनुष्य का चेहरा उसके आन्तरिक विचारों का, उसकी मानसिक क्रियाओं का द्योतक है। अतः दूसरों पर विश्वास तभी कीजिये, जब वे आपकी कसौटी में खरे उतर चुकें।

—:o:—

६. सन्देह दृष्टि

दूसरों को सन्देहात्मक दृष्टि से सदा देखते रहना भी अच्छा नहीं है। जिस प्रकार किसी पर सहसा विश्वास कर लेना अनुचित है, उसी प्रकार किसी को सन्देह की दृष्टि से देखना भी अच्छा नहीं है। दोनों सीमाओं का उल्लंघन न कर मध्यम मार्ग पर चलिए। पति सदा अपनी पत्नी को सन्देह की दृष्टि से देखता है। इसी प्रकार पत्नी भी पति पर सन्देह करती है। परिणामस्वरूप घर में रात-दिन अशान्ति और कलह फैला रहता है। दूकान का मालिक कर्मचारियों पर सन्देह करता है। आप ही बतलाइये वह किस प्रकार अपने व्यवसाय में सफल बन सकता है। दुनिया तो विश्वास पर ही चला करती है। अंग्रेजों के राज में भारतीय रेलवे कम्पनी के संचालक तो इंग्लैंड में रहते थे और उन्हें यह पूरा-पूरा ज्ञान भी था कि यहाँ क्या हो रहा है; किन्तु काम भारत में सुचारु रूप से होता रहता था। संचालकों को अपने कारिन्दों पर पूरा विश्वास रहता था। इसी प्रकार कारिन्दे भी संचालकों के विश्वासपात्र बने रहते थे। भारतीय काफी और चाय उद्यानों के भागीदार अमरीका तथा इंग्लैंड

रहते हैं; परन्तु यहाँ पर कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलता रहता है। सन्देह की अधिकता से सदा अशांति, कलह और द्वन्द्व का सूत्रपात ही हुआ करता है। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ दिन तक कसौटी पर खरा उतारने की चेष्टा कीजिये। न तो अन्ध-विश्वासी बनिये और न संशयात्मा ही। अतः मध्यम मार्ग को चुनिये।

—:o:—

७. असहिष्णुता

असहिष्णुता कई प्रकार की होती है; जैसे धार्मिक असहिष्णुता, साम्प्रदायिक असहिष्णुता आदि। जो भी हो असहिष्णुता मनुष्य की नीच-वृत्ति का नग्न-नृत्य है। इस संसार में सब झगड़ों और अशांति की जड़ असहिष्णुता है। अंग्रेज लोग आयरलैंड या जर्मनी के निवासियों को पसंद नहीं करते। एक हिन्दू मुसलमान के प्रति असहिष्णु रहता है और मुसलमान हिन्दू के प्रति। आर्यसमाजी और सनातनी भी आपस में असहिष्णुता का व्यवहार करते हैं, एक की बातें दूसरे को सहन नहीं होतीं। यह सब अज्ञान के कारण होता है। यह सब क्षुद्र विभेद केवल काल्पनिक है। दिल खोलिये, उसे उदार बनाइये। सबको

गले लगाइये । सबको अपने प्रेम का भागी बनाइये । सबसे प्रेम कीजिये । सबकी सेवा कीजिये । सबमें भगवान् के दर्शन कीजिये । सबसे मिलिये । अपने दृष्टिकोण में परिवर्त्तन कीजिये । मुक्त-सिद्धान्ती तथा उदार विचारवादी बनिये । मनुष्य-मनुष्य के बीच खड़ी हुई दीवाल को तोड़ डालिये ।

—:०:—

८. आत्महीनता की भावना

बड़प्पन और क्षुद्रता की भावना सर्वथा मन पर ही अवलम्बित है । हीन चरित्र मनुष्य भी, यदि वह प्रयत्न, संघर्ष और सद्गुणों का अर्जन करता है तो गौरवशाली बन सकता है । गौरवशाली व्यक्ति भी, यदि वह सम्पत्ति से हीन हो जाता है और बुरे मार्गों का अवलम्बन करने लगता है तो पशुता को प्राप्त हो जाता है । अपने में न तो बड़प्पन की भावना और न आत्मलघुत्व का ही निश्चय होना चाहिये । अपने को बड़ा समझने वाला मनुष्य जरूर दूसरों को अपने से नीचा समझेगा और वैसा ही उनके साथ [illegible]वहार भी करेगा । बड़प्पन और क्षु

का कारण अज्ञान है। समदृष्टि का विकास कीजिये।

—:०:—

९. असावधानी

असावधानी और विस्मृति दो प्रकार की चारित्रिक निर्बलतायें हैं जो मनुष्य की सफलता के मार्ग में रोड़े का काम करती हैं। असावधान व्यक्ति कोई भी कार्य समुचित ढंग से नहीं कर पाता है। वह दिल लगा कर कोई काम नहीं किया करता और किसी बात पर ध्यान नहीं दे सकता। भूलने वाले लापरवाह व्यक्ति से उसके अधिकारी असन्तुष्ट रहते हैं। उसमें अवधान का अभाव होता है। ऐसा व्यक्ति सदा चाबियाँ, जूते, छाता और फाउण्टेन पेन खोता रहता है। समय पर कार्यालय में रेकार्ड-विशेष के कागज प्रस्तुत नहीं कर सकता है। वह आँखें छिपाता है।

—:०:—

१०. अनिश्चय

कुछ लोग आवश्यक विषयों में भी कुछ निर्णय [illegible] कर पाते। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें [illegible]न्त्र निर्णय-शक्ति का अभाव है। व्यर्थ ही

किसी कार्य को आगे बढ़ाते चलना उनका स्वभाव हो जाता है; क्योंकि वे नहीं जानते कि किस प्रकार उस कार्य की पूर्ति की जाय। बहुत सोच-विचार करने पर भी वे संदिग्ध ही रहेंगे। अनिश्चयपरता के कारण उनको अनेकों स्वर्ण-अवसरों से हाथ धोना पड़ता है। अतः अपने सिद्धांतों का निश्चय कर लेना चाहिये। जब कभी किसी बात का निश्चय करना हो तो कुछ देर के लिये अच्छी तरह सोच-विचार कर लो और फिर तुरन्त ही एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाओ। एक बार निर्णय कर लेने पर अपनी सारी विचार-शक्ति को उसमें लगा दो, उपाय ढूँढ निकालो और उसे कार्यान्वित करो। बहुत अधिक सोचते रहने से कोई फल नहीं मिलता। महत्वपूर्ण कार्यों में यदि आवश्यक हो तो अपने से उन बड़ों की राय लो, जिन्हें उस विशेष कार्य का पर्याप्त अनुभव हो तथा जो आपके शुभचिन्तक हों।

—:o:—

११. कृपणता

अधिकांश व्यक्तियों में कृपणता की जड़ बड़ी गहराई तक जमी होती है। यही कारण है कि

उत्साह, सच्चाई आदि गुणों के होने पर भी वे अपने जीवन में कोई उन्नति नहीं कर पाते। उदार-हृदय व्यक्ति बहुत ही विरले हैं। बहुतों ने केवल उदारता के द्वारा ही अधिकार, ख्याति तथा सुख प्राप्त किये हैं। कृपण व्यक्ति कभी भी अपने जीवन में सफलता की आशा नहीं रख सकता। कृपणता का कारण स्वार्थ वृत्ति है। सांसारिक व्यक्तियों में से अधिकांश स्वार्थी हैं। धन ही उनका जीवन है। सभी प्रकार के दोष, लोभ, काम तथा घृणा उनमें भरे रहते हैं। यह शोचनीय है कि जज और जमींदार जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी रेलवे स्टेशन पर कुली के साथ एक-एक आने के लिये झगड़ते देखे जाते हैं।

यदि कृपण के पास ५०,००० रु० हों तो वह उनका उपयोग नहीं करता। वह एक लाख और अधिक पाने के लिये लालायित रहता है। यह खेद का विषय है कि धनिक वर्ग इतना कृपण और कठोर हृदय है कि वे अपने भोग-प्रसाधनों में अपने मित्रों को सहभोगी बनाना पसन्द नहीं करते। ऐसे लोग दान में एक पैसा भी नहीं देते। वे स्वयं स्वादिष्ट पदार्थ खायेंगे; परन्तु किसी गरीब क्षुधित

व्यक्ति को उसका स्वल्पांश भी देने की कभी भी उदारता न करेंगे।

इस नीच वृत्ति से छुटकारा पाने के लिये दुःखी और पीड़ित मानवता के कष्टों के निवारणार्थ प्रचुर, स्वेच्छिक तथा मुक्त दान देना एक प्रभावपूर्ण साधन है। अतः उदार वृत्ति का विकास कीजिये। केवल अपने स्त्री, बच्चे तथा परिवार की ही चिंता न कीजिये। जब कभी भी आप अभावग्रस्त या संकटग्रस्त लोगों से मिलें तो उन्हें धन और भोजन दीजिये। यदि आप देंगे तो सारे संसार की संपत्ति आपकी हो जायगी। धन आपके पास स्वतः आयेगा। यह प्रकृति का अकाट्य तथा अपरिवर्त्तनशील नियम है। अतः दान दीजिये। सबों के साथ मिलकर उपभोग कीजिये। अपने अन्दर की कृपणता को नष्ट कर डालिये। आपका हृदय विकसित होगा। आपके जीवन का दृष्टिकोण विशाल होगा। आधुनिक युग के बुद्ध बनिये।

—:o:—

१२. दुर्गुणों का दमन

यह कलियुग है। वैज्ञानिक आविष्कारों और खोज का युग है। यह फैशन और मिथ्या भाव

णाओं का युग है। यह वायुयान, सिनेमा, रेडियो और उपन्यासों का युग है और यही सब आधुनिक सभ्यता है। लोग अपनी-अपनी धुन और भ्रांति के अनुकूल कार्य करते हैं। कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति गुरु बना हुआ है। भोग-लिप्सा ने सबों पर अपना अधिकार कर रखा है। खाना, पीना और प्रजनन ही आजकल जीवन का लक्ष्य बन बैठा है। सबके अन्दर अनेक प्रकार के दुर्गुण प्रवेश कर गये हैं।

जब एक मित्र किसी अन्य मित्र से मिलता है तो वह 'जय श्रीकृष्ण,' 'जय श्रीराम' कह कर उसे अभिवादन नहीं करता, वरंच सिगरेट की डिब्बी और शराब के प्यालों से अभिवादन करता है। वह कहता है, 'आइये, मिस्टर नायडू! सिगरेट पीजिये। शराब पीजिये।' मदिरा इतना बलवान् दुर्व्यसन है कि यदि एक बार भी यह मनुष्य के कण्ठ से नीचे उतर जाय तो उसे पक्का शराबी बनाये बिना कभी नहीं छोड़ती। कुछ प्रतिष्ठित और ऊँचे घराने की आधुनिक भारतीय महिलाओं ने भी सिगरेट और मद्यपान सीख लिया है। आरम्भ में वे थोड़ी मात्रा में अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये पीती हैं और शीघ्र

ही वह उनकी आदत बन जाती है। मदिरा बड़ा घातक विष है जो कि मस्तिष्क के तन्तुओं और शिराओं को नष्ट कर देता है। इसके कारण अनेक स्नायविक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः मद्य पीने वालों की संगति से ही बचना चाहिये।

सिगरेट पीने वाले अपने आचरण के पक्ष में कुछ डाक्टरी दलीलें देते हैं। वे कहते हैं, 'इससे पेट साफ रहता है। मुझे सवेरे साफ पाखाना होता है। सिगरेट फेफड़ों और मस्तिष्क को प्रसन्न कर देती है।' वे अपने दुर्व्यसन के पक्ष में बहुत कुशल तर्क उपस्थित करते हैं। यह बुरी आदत विद्यार्थी जीवन से ही आरम्भ हो जाती है। सिगरेट पीने से आपको तनिक भी लाभ नहीं होगा। लाभ की भ्रमपूर्ण कल्पना को त्याग दो। धूम्रपान करने से फेफड़ों की हानि और नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है। निकोटीन सारी शरीर-प्रणाली को विषाक्त बना डालती है।

पान खाना एक दूसरी बुरी आदत है। इससे जिह्वा मोटी हो जाती। पान खाने वाले शब्दों का उच्चारण ठीक-ठीक नहीं कर सकते। उन्हें थूकने के लिये एक पीकदान चाहिये। यह गन्दी

आदत है। वे पान के साथ तम्बाकू भी खाते हैं। सिगरेट पीना, शराब पीना, पान खाना, नस्य लेना—ये सब बुरी आदतें हैं। गांजा, अफीम, चरस भी अन्य नशे हैं। लोग अपना चित्त प्रसन्न रखने के लिये अफीम खाते हैं। ये सारे नशे शरीर में विष भर देते हैं और मनुष्य को किसी प्रकार का कार्य करने के योग्य नहीं छोड़ते। इस भांति कुमार्ग में धन नष्ट होता है। इन बुरी आदतों के कारण मनुष्य कितना बलहीन हो गया है।

जो लोग दिन में कई बार गहरी चाय और काफी पीते हैं, उन्हें भी बुरी आदत पड़ जाती है। गन्दे उपन्यास पढ़ना भी एक बुरी आदत है। इससे मन में निकृष्ट तथा कामुक विचार भर जाते हैं।

दिन में सोना भी बुरा है। इससे जीवन की अवधि घटती है और आलस्य तथा तामसिकता का आविर्भाव होता है। यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं तो इस आदत को बिलकुल त्याग दो। वह व्यक्ति कितना सुखी है, जिसमें एक भी दुर्व्यसन नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है।

बहुत से लोगों को अपनी बातचीत में प्रत्येक पल असामाजिक और अश्लील शब्दों के प्रयोग करने की बुरी आदत होती है। जब वे क्रोध और आवेश में होते हैं तो उनके मुँह से लगातार गालियों की बौछार बरसनी आरम्भ हो जाती है। क्षण-क्षण में 'साला कहीं का' यही शब्द उनके मुँह से निकला करता है। 'शायद' शब्द की भांति यह उनका तकिया कलाम बन गया है। सभ्य, शिष्ट तथा सुसंस्कृत व्यक्ति कभी भी ऐसे शब्द नहीं बोलता। असभ्य व्यक्ति 'बेवकूफ', 'कुतिया का बच्चा' शब्दों का बहुधा प्रयोग करते रहते हैं। वे विना अपशब्द के बात ही नहीं कर सकते। यह बहुत बुरी आदत होती है। जब बालक ऐसे अपशब्द बोलें तो माता-पिता को चाहिये कि उन्हें मना कर दें। उनको स्वयं भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये।

आँख, कान, जीभ, नाक तथा चर्म ये पाँच—ज्ञानेन्द्रियां हैं। चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण और त्वक् इनके संस्कृत नाम हैं। वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पाँव), उपस्थ (जननेन्द्रिय) तथा पायु (गुदा)—ये पाँच कर्मेन्द्रियां हैं।

जिह्वा तथा उपस्थ इन्द्रिय बहुत ही उपद्रवी हैं। ये ही सबसे अधिक दुष्ट हैं। दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास इन्द्रिय-दमन में विशेष सहायक होता है। उपवास, सात्त्विक आहार तथा नमक, चीनी, मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, मांस, मछली इत्यादि के त्याग से जिह्वा पर नियन्त्रण होता है। ब्रह्मचर्य उपस्थ इन्द्रिय को और मौन वाक् इन्द्रिय को वश में करता है।

गलियों में भ्रमण करते समय बन्दर की भांति इधर-उधर मत देखो। पाँव के अंगूठे की ओर देखो तथा सीधे चलो। सिनेमा घरों, नाच घरों तथा ऐसे स्थानों पर न जाओ जहाँ पर अश्लील गीत या नृत्य होता हो। कठोर शय्या पर सोओ। नरम गद्दों पर सोना त्याग दो। इत्र तथा फूल का उपयोग न करो। अपनी इन्द्रियों पर कठोर निगरानी रक्खो और उनको वहीं रोक दो। जिसने अपनी इन्द्रियों को अनुशासित कर लिया है, उसका संकल्प बलवान् तथा मन शांत होगा। वह अच्छी तरह ध्यान कर सकता है। उसमें अपार आन्तरिक बल होता है। उसे जीवन में सफलता मिलती है। इन्द्रिय

दमन से आपको सद्गुणों के विकास तथा दुर्गुणों के उन्मूलन में बहुत सहायता प्राप्त होगी।

बुरी आदतों का निवारण बड़ा ही सरल है। एक वकील जो पन्द्रह वर्षों से धूम्रपान करते थे, एक ही दिन में उसे छोड़ने में कृतकार्य हो सके। भावना करो कि आप के अन्दर कोई बुरी आदत है और निश्चय पूर्वक अनुभव करो कि आपको उसे तुरन्त ही छोड़ देना चाहिये। बुरी आदत को एक ही झोंके के साथ छोड़ देना चाहिये। धीरे-धीरे कम करके छोड़ने का विचार प्रायः सफल नहीं हुआ करता। जब पुरानी आदत जोर करे तो सावधान हो जाओ। जब कभी तनिक-सा भी प्रलोभन उपस्थित हो तो दृढ़ता से अपना मुख फेर लो। मन को किसी कार्य में पूर्णतया व्यस्त कर दो। दृढ़ संकल्प करो कि मैं एक महान् पुरुष अवश्य बनूँगा। सारी बुरी आदतें क्षण भर में उड़ जावेंगी। जब किसी दुर्व्यसन का परित्याग करना हो तो अर्द्ध-चेतन मन (चित्त) की सहायता भी प्राप्त करो। नई स्वस्थ आदतें डालो। अपनी सङ्कल्प-शक्ति का भी विकास करो। कुसंगति का त्याग करो। इस संसार में कोई बात असम्भव नहीं है। कहावत है कि 'जहाँ चाह है, वहाँ राह है।'

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

सद्गुण

१. सत्य सम्भाषण

परमात्मा सत्य स्वरूप है, उसका साक्षात्कार सत्य-भाषण द्वारा ही किया जाता है। सत्यवादी व्यक्ति चिन्ताओं और व्याकुलताओं से सदा विमुक्त रहता है। उसका मन शान्त रहता है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है। यदि बारह वर्ष तक सत्यवादिता का अभ्यास किया गया तो वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। वाक्सिद्धि के उपलब्ध हो जाने पर जो कुछ भी मुँह से कहोगे, वह सत्य ही होकर रहेगा। वाणी में सत्यवादिता से तेज आ जाता है। सत्यवादी व्यक्ति हजारों को प्रभावित कर सकता है।

आपके विचार, वाणी और कार्य में साम्यता होनी चाहिये। साधारणतः व्यक्ति सोचते कुछ और हैं, कहते कुछ और हैं करते कुछ और ही

हैं। यह बहुत ही अनुचित है। इसे पाखण्ड नहीं तो और क्या कहा जाय? अपने विचारों, वचनों और कार्यों का सूक्ष्म ध्यान रखना चाहिये। असत्य सम्भाषण से जो कुछ थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है, उसका कोई भी मूल्य नहीं। आप अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग करते तथा चित्त को दूषित बनाते हैं। असत्य सम्भाषण की आदत ने बहुतों का विनाश किया है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र का नाम आज भी घर-घर में लिया जाता है, इसलिये कि वे सत्यवादी थे। हर अवस्था में उन्होंने अपने सत्य-वचन का प्रतिपालन किया था। सत्य के लिये उन्होंने न तो स्त्री की परवाह की और न राज्य की चिन्ता ही। सत्य के लिये उन्होंने अनेकों कष्टों को वरण किया। अपने जीवन के अन्त तक वे सत्यवादी ही बने रहे। विश्वामित्र मुनि ने उनको सत्य से डिगाने के लिये यथाशक्य प्रयत्न किये, परन्तु वे अपने षड्यन्त्र में विफल रहे और अन्त में सत्य की ही विजय हुई।

बड़े अक्षरों में लिखो—'सदा सत्य बोलो'—अपने घर की दीवाल पर इस प्रकार टांग दो

ं हर एक की दृष्टि सदा वहां पर पड़ती रहे। ब-जब आप असत्य भाषण करेंगे, तब-तब ह सूचना आपको सावधान करती रहेगी। आप त्तण उसे रोकने का प्रयत्न कर सकेंगे। एक न आयेगा कि आप सत्यवादिता में अपने को थर रख सकेंगे। जिस दिन कुछ झूठ बोलें तो के प्रायश्चित स्वरूप उपवास करें। सदाचारी नुष्य बुद्धिशाली मनुष्य से अधिक शक्तिशाली ता है।

सभी परिस्थितियों में सच बोलो। आरम्भ आप अपनी आय से हाथ भी धो सकते हैं; न्तु अन्त में आपकी विजय अवश्यम्भावी है। वकील जो कचहरी में सत्य बोलता है, झूठी ाही नहीं पढ़ाता आरम्भ में अपनी वकालत खो सकता है; परन्तु कालान्तर में वही ील न्यायाधीश और मवक्किलों से सम्मान करेगा। उसके पास सैकड़ों मवक्किल जमा जायेंगे। परन्तु उपक्रम में उसे उपरोक्त बलि- न अवश्य करना होगा।

—:०:—

२. नियम और समय की पाबन्दी

जब तुम अपने नियमों पर अटल तथा समय के पाबन्द रहोगे, तभी पूर्ण अनुशासन से काम में निरत रह सकते हो। अनुशासन के अभाव में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। मन 'अनुशासन', 'समय की पाबन्दी' के नाम से ही भयभीत हो जाता है। जो व्यक्ति नियम पूर्वक अभ्यास नहीं करता और अकस्मात् अभ्यास कर देता है, वह अपने प्रयत्नों के उचित फल को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करो। देखो, ऋतु-क्रम किस प्रकार नियम पूर्वक चल रहा है। सोचो, किस प्रकार नित्य नियमानुसार सूर्य उदित और अस्त होता है; वर्षाकालिक पवन आता है, फूल खिलते हैं और फल तरकारियां उगती हैं, चन्द्रमा और पृथ्वी धुरी पर घूमते हैं और रात-दिन, सप्ताह, मास, अयन और संवत्सर चक्कर लगाते हैं। प्रकृति तुम्हारा गुरु और पथ-प्रदर्शक है।

नियमितता, समय की पाबन्दी और अनु-शासन साथ-साथ चला करते हैं। उनको भिन्न

नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष के विश्वविद्यालय के छात्र वेष-भूषा, रीति-रिवाज में पश्चिम का अनुकरण कर लेते हैं। जिनका जीवन में विशेष महत्व नहीं, ऐसे चरित्रों के अनुकरण से क्या लाभ? पश्चिम के लोगों से, उन्होंने क्या यह सीखने की चेष्टा की है कि उनके ही समान हम भी नियम और समय के पाबन्द बनें। देखा नहीं कि अंग्रेज क्षण भर की भी देरी नहीं करते हैं। वे लोग समय के बड़े पाबन्द होते हैं। भारत की अपेक्षा पश्चिम में विशेषज्ञों, अन्वेषकों और शोधकों की संख्या कई गुणा अधिक है। यह ठीक है कि भारत में कुछ महापुरुष हो गये हैं; जैसे—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रमण, गान्धी आदि। परन्तु पश्चिम में विशेषज्ञों की संख्या को गिना भी नहीं जा सकता है। वे अपने इस गुण—समय की पाबन्दी के लिये प्रसिद्ध हैं।

भारतवासी अपने 'इण्डियन पंक्चुवैलिटी' के लिये प्रसिद्ध हैं। यदि समाचार-पत्र में सूचना होगी कि 'टाउन हाल' में ठीक चार बजे शाम को एक सभा होनी निश्चित हुई है तो भारत में लोग साढ़े पांच बजे के लगभग एकत्रित होना

आरम्भ करते हैं। यही 'इण्डियन पंक्चवैलिटी' है। जो लोग समय के पाबन्द नहीं होते, वे गाड़ी नहीं पकड़ पाते हैं। ऐसे लोग अपने व्यवसाय को खो बैठते हैं, अपने ग्राहकों को रुष्ट कर देते हैं। यदि विद्यार्थी समय का पाबन्द न हुआ तो अध्यापक उसे पसन्द नहीं करते हैं। यदि कोई व्यक्ति समय पर न्यायालय में उपस्थित नहीं होता तो मुकदमा में उसकी हार हो जाती है।

सम्पूर्ण जीवन को नियमित बनाओ। समय पर रात को सो जाओ और समय पर ही सबेरे उठो। समय पर भोजन करो। समय पर अध्ययन में निरत हो जाओ और समय पर शारीरिक व्यायाम करो। तुम्हारा जीवन सफल रहेगा। समय तत्परता को एक मूल-मन्त्र बना लो। अपना एक दैनिक कार्यक्रम निर्धारित कर लो और उसका पालन करो।

—:o:—

३. यथाकाल-व्यवस्था

यह एक ऐसा सद्गुण है जिसके द्वारा मनुष्य अपने को दूसरे व्यक्तियों के साथ हिला-मिला

लेता है, चाहे उन लोगों की प्रकृति कैसी भी क्यों न हो। जीवन में सफलता पाने के लिये अनुकूल व्यवहार-पटुता अनिवार्य गुण है। शनैः शनैः इसका उपार्जन करना आवश्यक है। आज अधिकांश लोग दूसरों के साथ हिल-मिल कर रहना नहीं जानते। व्यवहार-पटुता जीवन की एक कला है, जिससे व्यक्ति दूसरों के हृदय को जीत लेता है और थोड़ी-सी नम्रता से अन्ततः जीवन संग्राम में निश्चित विजय प्राप्त करता है।

पत्नी पति से हिल-मिल कर रहना नहीं जानती, अतः पति को सदा नाराज बनाये रखती है, घर में कलह का बीज बोती है और अन्ततः सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। कार्यालय का कर्मचारी अपने कार्याध्यक्ष से अनुकूल व्यवहार करना नहीं जानता है, अतः झगड़े में पड़ कर नौकरी से हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार व्यवसायी व्यवहार पटुता के अभाव में अपने ग्राहकों को नाराज कर देता है, फलतः अपने व्यवसाय को ही हानि पहुँचाता है। यह संसार केवल व्यवहार पर ही चल रहा है। जो व्यक्ति इस कला या विज्ञान को जानता है, वह जीवन की सभी परिस्थितियों में सुखी रहता है।

इस कला को समुन्नत करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में विनम्रता का होना आवश्यक है। यदि कर्मचारी अपने अध्यक्ष की मनोवृत्तियों का अध्ययन कर, तदनुकूल व्यवहार कर पाता है तो अध्यक्ष उसका ही गुलाम बन जाता है। उसे मृदु शब्दों का उपयोग करना होगा। धीरे बोल कर, मृदु वाणी बोल कर, अध्यक्ष की मनो-नीत आज्ञा का अक्षरशः पालन कर, उसकी बातों की उपेक्षा या विरोध न कर वह अपने स्वामी को प्रसन्न कर सकता है। आज्ञाकारिता सेवा से श्रेयस्कर है। 'हां जी,' 'जी हुजूर,' 'बहुत अच्छा महाशय,' कहो। ऐसा कहने से तुम्हारा कुछ व्यय नहीं होता है। उसके दिल में तुम्हारे प्रति एक हार्दिक भावना बनी रहती है। वह तुम्हारी गल-तियों को क्षमा कर देगा। हिल-मिल कर रहने के लिये नम्रता और आज्ञाकारिता आवश्यक गुण हैं। अहङ्कारी तथा अभिमानी मनुष्य के लिये इस गुण का विकास करना बहुत कठिन है। वह सदा संकट से घिरा रहता है। प्रत्येक कार्य में उसे असफलता ही मिलती है।

एक ही कमरे में रहने वाले विद्यार्थी एक दूसरे से हिल-मिल कर रहना नहीं जानते आपस में

कलह का सूत्रपात होता हैं। फल यह होता है कि मित्रता विच्छिन्न हो जाती है। हिल-मिल कर रहने से मित्रता चिरस्थायी रहती है। छात्रगण थोड़ी-थोड़ी बात पर झगड़ पड़ते हैं। एक छात्र कहता है: 'मैंने अपने मित्र 'क' को कितनी ही बार चाय पिलाई और कितनी ही बार मैं उसे सिनेमा में ले गया और आज जब मैं उससे प्रेमचन्द का गोदान मांगा तो उसने एकदम इनकार कर दिया। ऐसे मित्र से मेरा क्या काम? मुझे उसकी मित्रता पसन्द नहीं।' इस प्रकार उन दोनों की मित्रता विच्छिन्न हो जाती है। देखिये न, छोटी सी बात, उस पर दो मित्रों का सम्बन्ध-विच्छेद। यथाकाल-व्यवस्था ही वह दृढ़ सूत्र है जो सबों को प्रेम तथा मैत्री के अटूट पाश में बांधे रखता है। व्यवहार-पटु व्यक्ति संसार में कहीं भी जाय, किन्हीं लोगों के बीच में रहे, सदा आनन्दपूर्वक जीवन यापन कर सकता है। ऐसा व्यक्ति अज्ञात रूप से ही सबों का प्रेम-पात्र बन जाता है। दूसरों के प्रेम की बात छोड़िये, अपना जीवन ही शक्ति और अनहत आनन्द से परिपूरित हो उठता है।

यथाकाल-व्यवस्था से त्याग-भावना विकसित होती है और स्वार्थपरता का अन्त हो जाता है।

व्यवहार कुशल व्यक्ति अपनी वस्तु में दूसरों को भी हिस्सा देता है। उसे निन्दा, अपमान तथा कटु शब्द सहन करना पड़ता है। उसे जीवन की एकता का दर्शन करना पड़ता है। जो इस गुण का अभ्यास करता है, उसे घृणा तथा अहं भावना को विनष्ट करना पड़ता है और सबों से हिल-मिल कर रहना पड़ता है। इस सद्गुण के द्वारा विश्वप्रेम की भावना विकसित होती है तथा घृणा-भाव का नाश होता है।

४. निष्कपटता और ईमानदारी

निष्कपट और ईमानदार व्यक्ति सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करता है। उसके उच्च अधिकारी उससे खुश रहते हैं। पश्चिम के देशों में ईमानदारी को सर्वोत्तम नीति कहा जाता है; किन्तु पूर्व में इसे परम धर्म (गुण) कहा जाता है। इन गुणों से समनुयुक्त व्यक्ति संसार में कहीं भी चला जाय, लोग उसका आदर-सत्कार करेंगे। निष्कपट और ईमानदार व्यक्ति बहुत ही विरले होते हैं।

निष्कपट व्यक्ति दूसरों के दुःख से दुखित होता है और उसे निवारण करने का यथाशक्य प्रयास करता है। उसमें सहानुभूति की प्रचुरता

होती है। निष्कपट व्यक्ति बहुत ही उदार होता है। कूटनीति, ठगी, नीति पटुत्व, दोहरी चाल से वह वियुक्त होता है। वह दम्भ और छल से कोसों दूर रहता है। उसे अपनी आजीविका के लिये कहीं भी कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। निष्कपट व्यक्ति अपने स्वामी का हितचिन्तक होता है। खरा मित्र, निष्कपट पत्नी, सच्चा पुत्र तथा सच्चा सेवक इस भूलोक में साक्षात् देवतुल्य हैं। आर्जव से बढ़कर इस संसार में और कोई गुण नहीं है। सबों को इसका उपार्जन करना चाहिये।

५. धैर्य और उद्योग

धैर्य और उद्योग सात्त्विक गुण हैं। जब तक इन दोनों गुणों का सम्पादन न कर लिया जाय, लौकिक या पारमार्थिक सफलता नहीं मिल सकती। पद-पद पर कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं, किन्तु धैर्य और उद्योग के द्वारा उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। महात्मा गांधी जी की सफलता का मूल-मन्त्र यही था। वे विफलताओं से कभी भी हताश नहीं होते थे। संसार के सभी महापुरुषों ने धैर्य और उद्योग के बल पर अपने जीवन में महानता, सफलता और प्रसिद्धि की प्राप्ति कर पाई।

धैर्यशील व्यक्ति का दिमाग सदा शान्त रहता है। उसकी बुद्धि सदा ठिकाने पर रहती है। वह आपदाओं और विफलताओं से भय नहीं खाता। अपने को दृढ़ बनाने के लिये वह अनेकों उपाय खोज निकालता है। एकाग्रता के अभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिये भी धैर्य की महान् आवश्यकता है। बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो कठिनाइयों के आ जाने पर काम छोड़ देते हैं; उनमें धैर्य और उद्योगशील स्वभाव की कमी है। ऐसा नहीं होना चाहिये। क्रोधी स्वभाव पर विजय पाने के लिये धैर्य एक सबल साधन है। कभी भी किसी बात की शिकायत न करो। धैर्य प्रचुर बल प्रदान करता है।

६. आत्मनिर्भरता

स्वावलम्बन प्रमुख गुण है। इससे आंतरिक शक्ति प्राप्त होती है। लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की सफलताओं के पाने के लिये यह एक अनिवार्य गुण है। साधारणतः देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य सदा दूसरों के आश्रित रहते हैं। भोग-विलास की आदत ने मनुष्य समाज

को जूते पहनाने के लिये भी नौकर चाहिये। वे कुंवे से जल नहीं खींच सकते। एक फर्लांग पैदल चलना उनके लिये दूभर है। आजकल व्यक्ति हर बात के लिये दूसरों पर निर्भर रहा करता है। अपना भोजन अपने हाथों बनाना चाहिये। नौकरों से काम कराने की आदत छोड़ देनी चाहिये। अपने वस्त्र अपने हाथ से धोने चाहिये। नित्यप्रति कालेज या कार्यालय में पैदल ही जाना चाहिये। इज्जत, मान और समाज में अपनी प्रतिष्ठा के भाव को छोड़ देना चाहिये। मद्रास उच्च न्यायालय के प्रख्यात मुख्य न्यायाधिपति श्री टी. मुत्तु स्वामी अय्यर पैदल चलकर ही कचहरी को जाया करते थे। उनके इस स्वावलम्बन के गुण के कारण आज भी लोग उनका नाम स्मरण करते हैं।

७. प्रत्युत्पन्नमति

कभी-कभी व्यावहारिक कठिनाइयां दुविधा में डाल देती हैं। तुम्हें हतोत्साह नहीं होना चाहिये। हिम्मत न हारो, वल्कि अपनी बुद्धि का उपयोग करो। चतुर तरीकों और सफल योजनाओं का आविष्कार करो। अपनी आंतरिक शक्तियां और

प्रसुप्त क्षमताओं को काम में लाओ। जब घर में आग लग जाती है तो तुम कितनी फुर्ती से काम में जुट जाते हो। किस प्रकार और कहां से यह दृढ़ता और स्फूर्ति आई? पता नहीं चलता कि कहां से वह तेज और वह बल आया। उस समय तुम्हें दूसरे कामों का ज्ञान नहीं रहता, तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है। तुम सुन्दर व्यवस्था पूर्वक कार्य करने लग जाते हो और इस प्रकार अपने घर की सम्पत्ति और सम्बन्धियों के प्राण की यथासम्भव रक्षा कर पाते हो। तुम अद्भुत कार्य करते हो। जब बला टल जाती है तो कहते हो कि ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति उस समय मेरे अन्दर कार्य कर रही थी।

समय का निरर्थक प्रयोग न करो। जब एक बार कार्य का निश्चय कर लिया है तो दक्षता पूर्वक उसका सम्पादन करो। दीर्घसूत्रिता समय का नाश कर देती है।

८. सन्तोष

पश्चिम में एक कहावत है कि सन्तुष्ट व्यक्ति सदा दावत का आनन्द लेता रहता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि लालची व्यक्ति सदा अशान्त

रहता है। लालच अग्नि के समान है, वह व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर जला डालता है। लालच-रूप विष की प्रतिक्रिया के लिए सन्तोष ही अचूक औषधि है। सन्तोष से महान् और कोई भी सम्पत्ति उपार्जन करने योग्य नहीं है। सन्तुष्ट व्यक्ति सबसे अधिक सम्पत्तिशाली व्यक्ति के समान जीवन व्यतीत करता है। उसकी शान्ति का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसे इस भूमि का शक्तिशाली सम्राट् कहा जाय तो अनुचित न होगा।

जिस व्यक्ति के पास एक करोड़ रुपया होता है, वह दस करोड़ के लिए लालायित रहता है। मन की तो यह विशेषता है ही कि वह एक पदार्थ को प्राप्त कर दूसरे पर कूद जाता है। इसी लोलुप मन के कारण ही संसार में प्रत्येक मनुष्य अशान्त होकर मारा-मारा फिरता है। 'यह मेरा है,' 'वह मेरा है,' 'मैं उसका उपार्जन अवश्य करूंगा'—इस प्रकार की भावनाएं करता रहता है। इस भांति मनुष्य विपत्ति-जाल में फंस जाता है और अशान्त बनता है। जहां लोभ, वहां काम-वासना और इसी प्रकार जहां काम-वासना, वहां लोभ भी अवश्य ही रहेगा। लोभ और काम के कारण बुद्धि भ्रष्ट हो

जाती है, समझ में पत्थर पड़ जाता है, स्मृति पोली हो जाती है।

संतोष मनुष्य को आलसी नहीं बनाता है। इससे तो मन को शक्ति और शान्ति की प्राप्ति होती है। सन्तोष धारण करने से अनावश्यक और स्वार्थपूर्ण चेष्टाओं का प्रवाह रुक जाता है। सन्तुष्ट व्यक्ति का मन शान्त तथा एकाग्र होने से अधिक काम करने में समर्थ होता है।

९. चरित्र-निर्माण

मनुष्य का शरीरान्त होने पर भी उसका चरित्र बना रहता है। चरित्र ही मनुष्य में शक्ति और शौर्य का स्फुरण भरता है। चरित्रहीन व्यक्ति संसार में मृतक के समान है। निष्कलंक जीवन का उपार्जन करो। मनुष्य जीवन का सारांश है चरित्र।

चरित्र और धन की तुलना हो ही नहीं सकती। चरित्र एक शक्तिशाली उपकरण है। यह एक सुन्दर पुष्प के समान है जो अपनी सुरभि दूर-दूर तक विकीर्ण करता है। महान् विचार तथा उज्ज्वल चरित्रशाली व्यक्ति का ओज प्रभावशाली होता है।

कितना ही चतुर कलाकार क्यों न हो, कितना ही निपुण गायक क्यों न हो, कवि या वैज्ञानिक ही क्यों न हो, पर चरित्र न हुआ तो समाज में उसके लिये सम्मान्य स्थान नहीं है। जन समाज उसकी अवहेलना ही करेगा।

चरित्र व्यापक शब्द है। साधारणतः चरित्र का अर्थ होता है नैतिक सदाचार। जब हम कहते हैं कि श्री रामनारायण व्यक्ति चरित्रशाली है तो हमारा अर्थ होता है कि वह नैतिक सदाचारशील है। असत्य भाषण करना, स्वार्थी और लोलुप होना, दूसरों के दिलों में चोट पहुँचाना—इन सब से मनुष्य के दुश्चरित्र का बोध होता है।

निष्कलंक चरित्र का निर्माण करने के लिये यह गुण उपार्जित किये जाने चाहिये :—

नम्रता, अहिंसा, क्षमाशीलता, निर्भयता, क्रोध-हीनता, जीवदया, सौजन्य तथा घृणा और द्वेष का अभाव।

कार्य करने पर एक प्रकार की आदत का भोग उदय होता है। आदत का बीज बो देने से चरित्र का उदय होता है। चरित्र का बीज बो देने से

भाग्य का उदय होता है। चित्त में विचार, अनुभव और कर्म के संस्कार मुद्रित हो जाते हैं। व्यक्ति के मर जाने पर भी यह संस्कार जीवित रहते हैं। विचार और कर्मजन्य संस्कार मिल कर चरित्र का निर्माण करते हैं। व्यक्ति ही इन विचारों और आदतों का विधाता है। आज जिस अवस्था में व्यक्ति को देखते हो, वह भूतकाल का ही परिणाम है। वह आदत का उत्तर रूप है। प्रत्येक व्यक्ति विचारों और कार्यों पर नियंत्रण स्थापित कर आदतों का मनोनुकूल निर्माण कर सकता है। यदि बुरे विचारों और बुरी आदतों के बदले अच्छे विचारों और अच्छी आदतों का अभ्यास किया जाय तो व्यक्ति को दिव्य गुणों से परिपूरित कर दिया जा सकता है। असत्यवादी सत्यवादी बन सकता है। दुश्चरित्र सन्त बन सकता है।

व्यक्ति की आदतों, गुणों और आचार को प्रतिपक्ष भावना की विधि से बदला जा सकता है। प्रतिपक्ष-भावना विरोधी गुणों की भावना को कहते हैं। साहस और सत्य की भावना करो। साहसी और सत्यवादी बन जाओगे तो भय और असत्यवादिता का स्वयं ही निवारण हो जायगा। ब्रह्मचर्य और सन्तोष का विचार करो तो काम-

वासना और लोभ का पराभव हो जायगा। प्रतिपक्षीय भावना द्वारा अपनी दुश्चरित्रता का दमन करना चाहिये, यह वैज्ञानिक विधान है। चरित्र के लिये व्यक्ति का विचार, आदर्श और मानसिक प्रेरणायें ही उत्तरदायी हैं। यदि विचारों, आदतों और मानसिक प्रेरणाओं को बदल दिया जाय तो चरित्र भी बदला जा सकता है। नवीन, स्वस्थ, बलशाली और धर्मपूर्ण आदतें पुरानी, अस्वस्थ, अपवित्र, निर्बल और अधर्मपूर्ण आदतों को स्थानान्तरित कर देती हैं। चरित्र-निर्माण ही सन्तत्व का विभूषण है। अपने चरित्र का निर्माण करो। चरित्र-निर्माण से ही जीवन में सच्ची सफलता मिल सकती है।

पंचम अध्याय

शिक्षा

१. शिक्षा

पौर्वात्य हिंदू ऋषियों की सभ्यता और संस्कृति तथा पाश्चात्य देशों की संस्कृति की रीतियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। मुख्य भेद यही है कि पाश्चात्य देशों में लोग अपने संकल्प और स्मृति को भौतिक उन्नति और लौकिक समृद्धि के हेतु प्रयुक्त करते हैं। उन्होंने सामान्यतः परा जीवन की तो अवहेलना ही कर दी है। यह उन लोगों की महान् भूल है। परन्तु भारत के योगीजन अपनी स्मृति और संकल्पशक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के लिये शिक्षित करते हैं। उनका लक्ष्य सदा आत्म-साक्षात्कार ही हुआ करता है। अतः पाश्चात्य देशों के दार्शनिकों को आध्यात्मिक संस्कृति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और किसी भी संस्कृति के आध्यात्मिक आधारों को तो भूलना ही नहीं चाहिये। भौतिक उन्नति की प्राप्ति तो कुछ सीमा तक ही हो सकती है। साथ-साथ आध्या-

त्मिक गुणों का विकास भी होते रहना चाहिये। यह आवश्यक है।

हमारे कालेज के विद्यार्थियों में खोखले अनुकरण का भूत प्रवेश कर गया है। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता से धूम्रपान करना; पतलून, हैट, बूट, कालर, नेकटाई पहनना; अंग्रेजी ढंग से बाल कटाना आदि सीखा है। परन्तु उन्होंने पाश्चात्य देशों के अनेक अन्य सद्गुणों को ग्रहण नहीं किया है। आत्मबलिदान, देशप्रेम, सेवा-भावना, समय की पाबन्दी, लगन, सहनशीलता, विद्वत्ता इत्यादि श्लाघ्य गुण पश्चिम के लोगों में हैं। कुछ धनी परिवार के नवयुवकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय और निराशाजनक है। वे सिनेमा के टिकट पूरे महीने भर के मँगा लेते हैं और अपना समय ताश खेलने और गंदा जीवन बिताने में नष्ट करते हैं। वे धार्मिक मनोवृत्ति वाले विद्यार्थियों का साथ पसंद नहीं करते। वे आधुनिक फैशन तथा स्टाइल के गुलाम बन चुके हैं।

आधुनिक विश्वविद्यालयों में परीक्षा पास करके वास्तविक शिक्षा या सच्ची संस्कृति नहीं प्राप्त होती। पुस्तकें रट कर कोई भी डिग्री ले सकता

है। आवश्यकता तो है नैतिक संस्कार की, आत्म-ज्ञान की, अधार्मिक स्वभाव को धार्मिक बनाने की, सद्व्यवहार की, सच्चरित्रता की, इन्द्रिय संयम की, आत्म-निग्रह की और दिव्य सद्गुणों की। इस प्रकार की अलभ्य शिक्षा आधुनिक विश्व-विद्यालयों में नहीं मिल सकती। पाठ्य विषयों में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। जो पुस्तकें नैतिक आचारों को समुन्नत करने में सहायक हों, वे ही पढ़ाई जानी चाहिये। तभी कोई विश्व-विद्यालय सच्ची शिक्षा और संस्कृति से युक्त विद्यार्थी तैयार कर सकता है।

जैसी शिक्षा मिलती है वैसा ही विद्यार्थियों का स्वभाव तथा चरित्र बनता है। देश की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा भी क्रियात्मक होनी चाहिये। विद्यार्थी के मस्तिष्क में ऐसे-ऐसे विषय भर देना जो कि निकट भविष्य में किसी उपयोग में न आ सकते हों—यह तो शिक्षा नहीं है। परीक्षा से पहले विद्यार्थी पाठ याद कर लेते हैं और परीक्षा होते ही भूल जाते हैं। ये पाठ उनके दैनिक व्यवहार में प्रायः किसी भी काम के नहीं पाये जाते।

विद्यार्थियों को थोड़े से आसन, प्राणायाम, प्रार्थना तथा धार्मिक शिक्षाप्रद कहानियों की शिक्षा दी जानी चाहिये। उनके जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। धर्म में ही नीति, सदाचार और संस्कृति का समावेश है। धार्मिक संस्कृति जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्णता प्रदान करती है।

बालक देश का भावी नागरिक होता है। वह राष्ट्र का धन है। उपयुक्त शिक्षा के द्वारा उसे अपनी प्रच्छन्न शक्तियों के प्रकट करने का अवसर मिलना चाहिये। यदि वह हृदय और मस्तिष्क के उत्तम गुणों से सम्पन्न होगा तो संसार में उदीयमान नक्षत्र के समान प्रकाश विकीर्ण करेगा।

—:०:—

२. आधुनिक जीवन

वैज्ञानिकों ने भौतिक जगत् में बहुत से अनुसन्धान किये हैं और उन्होंने प्रकृति की भौतिक शक्तियों के नियन्त्रण के उपाय खोज निकाले हैं। परन्तु क्या ये वैज्ञानिक अन्वेषण हमें वास्तव में सुखी बना सकते हैं? विज्ञान ने हमारे लिये

क्या किया है? निस्संदेह विज्ञान ने भौतिक ज्ञान-कोष की बहुत कुछ वृद्धि की है; परन्तु क्या अब हम वास्तव में सुखी हैं? क्या बिजली का पंखा, वायुयान, रेडियो तथा सिनेमा हमें सच्ची शांति दे सकते हैं जिसके लिये मन लालायित रहता है? वैज्ञानिक वर्षों तक कमरे में बंद रहकर आविष्कार तथा खोज करते रहते हैं। इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। वे हमें सुविधायें प्रदान करते हैं। बिजली हमारा सारा काम करती है। वह पानी निकालती है, हमें लन्दन और पेरिस पहुँचाती है। विज्ञान ने हमारी यात्रायें और यातायात को बहुत सुगम और त्वरित बना दिया है। परन्तु इसमें कुछ हानियां भी हैं और वे हानियां इनसे प्राप्त होने वाले लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। इससे हमारा जीवन बहुत ही खर्चीला और विलासपूर्ण बन गया है। मनुष्य अब पहले से अधिक अशांत है। आज के विलास के प्रसाधन कल की आवश्यकता के प्रसाधन बन जाते हैं। प्रत्येक नर-नारी रेडियो, टार्च, कलाई-घड़ी, मोटर कार तथा गृह-सिनेमा चाहता है। जीवन का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। अधिकारी और कर्मचारी अपने जीवन-निर्वाह के लिये असत्य सम्भाषण और

घूस लेने से नहीं हिचकिचाते। सभी ऋण के भार से दबे हुये हैं। सिनेमा और फैशन उनकी सारी आय को चूसे जा रहा है। लोगों के जीवन का कोई मापदण्ड ही नहीं है। वे इस विषय-जगत में आत्म-विभ्रम हो भटक रहे हैं। इन्द्रियों की तृप्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य है। तथाकथित शिक्षित जन भी इससे अछूते नहीं हैं। वे तो और भी अधिक अज्ञान में हैं। बुद्धिशाली जन घूस लेने तथा अनैतिक रूप से धनोपार्जन करने के अनेक चतुर ढंग खोज निकालते हैं। सर्वत्र ही भ्रष्टाचार फैला हुआ है। सच्चाई और ईमानदारी का कहीं पता नहीं है। कूटनीति, चाल, धोखा और छल-कपट ने सबों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। ये सब वैज्ञानिक आविष्कार तथा पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित विलासपूर्ण जीवन के दुष्परिणाम हैं। इसने सर्वत्र ही अशांति ला दी है। शारीरिक पतन हो चला है। लोग अब एक फर्लांग भी पैदल नहीं चल सकते हैं। इसके लिये भी उन्हें गाड़ी की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टर या वकील भले ही भूखे मर रहा हो, पर उसको मोटर रखनी ही पड़ती है अन्यथा उसे रोगी या मवक्किल नहीं मिलेंगे। उसकी पत्नी को रेशमी

साड़ी तथा सौंदर्य के सारे प्रसाधन चाहिये। उसे सिनेमा में स्थान सुरक्षित कराने पड़ते हैं। इन सब चीजों के लिये वह धन कहां से लाये? वह गरीबों से पैसा निकालता है। डाक्टर बोतल को जल और रंगीन औषधि से भर देता है और उसके लिये भारी रकम वसूल करता है। वह लोगों के घर जाने तथा दवा की सुई लगाने के लिये भारी रकम ऐंठता है। करुणा, सहानुभूति और ईमानदारी उसके हृदय से दूर चले गये हैं। डाक्टर कहता है, 'मैं क्या करूँ? जमाना बुरा आ गया है। जीवन-निर्वाह बहुत ही महँगा है। बच्चों की शिक्षा महँगी हो गई है। मैं जानता हूँ कि मैं गलत मार्ग पर हूँ; परन्तु मैं ऐसा करने को विवश हूँ। मुझे झूठ बोलना तथा अनुचित रूप से धनोपार्जन करना पड़ता है।' प्राचीन काल में लोग अपने वस्त्र स्वयं धोते थे। वे प्रतिदिन कई मील चल लेते थे। वे हृष्ट-पुष्ट होते थे। वे सरल जीवन व्यतीत करते थे। नैपाली तथा महाराष्ट्रीय श्रमिकों को अब भी देखो। वे साधारण रोटी, नमक तथा दो मिर्च पर निर्वाह करते हैं फिर भी वे कितना काम करते हैं। उनका शरीर और शारीरिक बल आश्चर्यजनक है। आज सभी ओवल्टीन, विटामिन सत, अलेन-

वरी रस्क तथा ओट मील चाहते हैं। पत्नी अपने लिये एक अलग नौकर और रसोइया चाहती है। आपको जूता पहनाने के लिये भी नौकर चाहिये।

तो क्या इस वर्तमान की शोचनीय अवस्था के सुधार का कोई उपाय है? हमें पुनः प्राकृतिक जीवन की ओर मुड़ना होगा। हमें अपने पूर्वजों का सिद्धांत—सरल जीवन और उच्च विचार अपनाना होगा। सरल और प्राकृतिक जीवन व्यतीत कीजिये। सादे वस्त्र पहनिये। प्रतिदिन पैदल चलिये। सिनेमा जाना तथा उपन्यास पढ़ना छोड़ दीजिये। कठोर और श्रमपूर्ण जीवन यापन कीजिए। आत्मनिर्भर बनिये। अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिये। व्यवहार में सच्चे रहिये। मन और इन्द्रियों का नियन्त्रण कीजिये। सद्गुणों का विकास कीजिये। सच बोलिये और धर्मानुकूल काम कीजिये।

—:०:—

३. विवाह

विवाह एक व्यावहारिक सौदा नहीं है, किंच पति और पत्नी में एक धर्म-बन्धन है जिसके द्वारा

वे धर्मयुक्त जीवन बिता कर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। विवाह का उद्देश्य तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष--इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करना है।

भारत में माता-पिता ही अपने पुत्र के लिए लड़की की खोज करते हैं। वे वंशावली की भली भांति जांच-पड़ताल करते हैं। यहां प्रणय की प्रथा नहीं है। बालक और बालिकाओं को अपने पत्नी और पति के चुनाव करने देने में बहुत सी हानियां हैं; क्योंकि उनमें विवेक और अनुभव नहीं होता।

यदि मनुष्य गृहस्थ जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा वंश के लिए ही मैथुन करे तो उसकी सन्तान स्वस्थ, बुद्धिमान, बलवान्, सुन्दर तथा आत्मत्यागी होगी। उसे अपनी पत्नी को भी धर्माचरण, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, धारणा, ध्यान तथा सद्गुणों का अर्जन आदि की शिक्षा देनी होगी। वह घर सचमुच वैकुण्ठ ही है जहां पति और पत्नी आदर्श जीवन बिताते हैं। पति को अपनी स्त्री और संतान को फैशन की शिक्षा न देकर उन्हें सरल और पवित्र जीवन बिताने के

माता-पिता का कर्तव्य है कि वे सबसे पहले अपने को आदर्श बना लें, तभी बालक भी उनका अनुकरण कर सकेंगे। यदि माता-पिता में खराब आदतें हुईं तो उनके बच्चे भी उनका अनुकरण करेंगे, क्योंकि बच्चों में तो प्रधान गुण है अनुकरण करना।

गृहस्थों को अपने बच्चों की चाल-ढाल का ध्यान रखते रहना चाहिये, ताकि वे कुसंगति में न पड़ जायं। माता-पिता का महान् कर्तव्य है, अपने बच्चों को शिक्षित-दीक्षित करना। यदि वे अपने इस प्रमुख उत्तरदायित्व को नहीं निभाना चाहते हैं तो अच्छा था, यदि वे तभी अपने को काम के वशीभूत न होने देते और सन्तति-प्रजनन के कारण न बनते। असत्य भाषण करनें पर बच्चों को दण्ड मिलना चाहिए। उन्हें धूम्रपान करने, सिनेमा जाने तथा उपन्यास पढ़नें की छूट नहीं देनी चाहिए।

बाल-विवाह समाज के लिए घातक है। सारा भारत बाल-विधवाओं से भरा पड़ा है। बेचारे नव-युवक, जिनको इस संसार और जीवन का रत्ती भर पता नहीं है, चौदह या सोलह वर्ष की अल्पायु में ही विवाह-पाश में आबद्ध कर दिये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चे ही बच्चे पैदा कर रहे हैं। अठारह वर्ष के एक लड़के के भी तीन लड़के हैं। कितनी दयनीय अवस्था है! तभी तो आज के समाज का मानसिक और शारीरिक पतन हो रहा है। दीर्घायु का कहीं नाम नहीं। सभी अल्पायु हैं। अधिक सन्तानोत्पादन के कारण स्वास्थ्य गिर जाता है और अनेकानेक रोग पैदा हो जाते हैं।

पचास रूपये मासिक पाने वाले एक किरानी के तीस वर्ष की आयु में छः बच्चे की वृद्धि हो जाती है। वह कभी नहीं सोचता कि 'मैं इतने बड़े परिवार का भरण-पोषण किस प्रकार करूंगा? मैं अपनी सन्तान को किस प्रकार शिक्षित बनाऊंगा? मैं अपनी पुत्री का विवाह किस प्रकार करूंगा? कामोत्तेजन में वह अनिष्ट कार्य को बार-बार करता है। उसमें जरा भी आत्मसंयम नहीं है। वह काम का पूर्ण गुलाम है। सुअर और खरहों की भांति वह सन्तान पैदा करता है और वे बच्चे संसार में भिखारियों की संख्या बढ़ाते हैं। पशुओं में भी आत्म-संयम है। अपनी बौद्धिकता की डींग मारने वाला मनुष्य ही स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करता है और इसमें वही दोषी है।

कम वेतन पाने वाले व्यक्ति को बड़े परिवार का पालन करनेके लिए घूस आदि अवैधानिक व्यवसायों का सहारा लेना पड़ता है। उसकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और धन जमा करने के लिए हर बुरे काम करने को उतारू हो जाता है। ईश्वर की याद ही नहीं आती। काम-वासना की भंयकर लहर उसे बहा ले जाती है। वह अपनी पत्नी का दास बन जाता है। जब वह उसकी इच्छाओं की पूर्त्ति नहीं कर सकता तो उसके तीखे व्यंगों और कटु वचनों को मन मार कर सहता रहता है।

पश्चिम से आपने फैशन तथा पोशाक की बहुत-सी आदतें सीखी हैं। आप नकल करने वाले पशु बन बैठे हैं। पश्चिम में लोग तब तक विवाह नहीं करते, जब तक उनमें परिवार पालन की योग्यता और शक्ति नहीं आ जाती। उनमें अधिक आत्म-संयम है। पहले वे अपने जीवन के लिए निर्वाह-साधन खोज निकालते हैं, तब धन-संग्रह करते हैं, बाद में जाकर विवाह करते हैं। वे संसार में भिखारियों की संख्या को बढ़ाना नहीं चाहते।

—::o—

४. काम-वासना

काम-वासना का अर्थ किसी तीव्र लालसा से लगाया जाता है। किसी भी इन्द्रिय-व्यापार की बार-बार पुनरावृत्ति करने से वासना बहुत ही तीव्र और बलवान् हो जाती है। देशभक्तों में देश-सेवा की लालसा रहती है। उत्तम कोटि के साधकों में आत्म-दर्शन की लालसा रहती है। कुछ लोगों में उपन्यास पढ़ने की लालसा रहती है और कुछ लोगों में आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने की। किन्तु काम-वासना का साधारण अर्थ अधिकतर कामुक वृत्ति अथवा तीव्रतर स्त्री-पुरुष-भोगेच्छा से लिया जाता है। यह काम-तृप्ति के लिए सांसारिक तृष्णा है। मनुष्य की सम्भोग-वृत्ति उसे इन्द्रिय भोगों की ओर सहज ही प्रेरित करती है।

काम-वासना प्रत्येक में मौजूद रहती है; पर छोटे बालकों और बालिकाओं में इसका स्वरूप बीज के समान रहता है। इसलिए इस वृत्ति से उन्हें कोई कष्ट नहीं होता है। वृद्ध पुरुषों और स्त्रियों में यह वृत्ति दब जाती है। यह अधिक उपद्रव नहीं करती है। तरुणावस्था में पदार्पण करने वाले युवकों और युवतियों के लिए ही यह

वृत्ति अधिक उपद्रवी बन जाती है। वे इसके सामने निरुपाय बन जाते हैं।

राजसिक आहार तथा मांस-मछली, राजसिक आचार-विचार, राजसिक रहन-सहन, इत्र, सिनेमा, उपन्यास-पठन, विषय-वार्त्ता, कुसंगति, मद्य-पान, सभी प्रकार के मादक द्रव्य, बीड़ी आदि काम-वासना को उत्तेजित करते हैं। पश्चिम के प्रख्यात डाक्टर बतलाते हैं कि वीर्य-क्षय से, विशेषकर युवावस्था में, बहुत से रोग पैदा होते हैं। शरीर में फोड़े-फुन्सी, गड़ी आंखें, पीला चेहरा, रुधिर की कमी, स्मरणशक्ति का ह्रास, नेत्रदृष्टि की कमी, मूत्र के साथ वीर्य का स्राव, अण्डकोषों की वृद्धि, अण्डकोष में दर्द, दुर्बलता, निद्रा, आलस्य, उदासी, हृदय-कम्प, श्वास में कठिनाई, मन की चंचलता, बुरे स्वप्न, स्वप्न-दोष आदि वीर्य-क्षय के ही परिणाम हैं। भारतीयों की औसत आयु २२ वर्ष की है जब कि योरोपवासियों की ५० वर्ष की है।

मातृभूमि भारत के सभी शुभेच्छुकों को चाहिए कि वे इस चिन्ताजनक स्थिति का विचार कर इसका उचित उपचार करने में प्रयत्नशील हों

तथा विद्यार्थियों और गृहस्थियों में ब्रह्मचर्य को पुनः स्थापित करें।

माता-पिता, संरक्षक, शिक्षक तथा प्राध्यापक का यह कर्तव्य है कि वे अपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दें। युवक-शिक्षण का अर्थ है राष्ट्र-निर्माण।

—:o:—

५. ब्रह्मचर्य

मन, वचन तथा कर्म से अविवाहित जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य का व्रत है। इसका तात्पर्य न केवल उपस्थेन्द्रिय का दमन है अपितु सारी इन्द्रियों का संयम होता है। ब्रह्मचर्य के अभ्यास से अच्छा स्वास्थ्य, आन्तरिक शक्ति, बल, मानसिक शान्ति और दीर्घ जीवन प्राप्त होते हैं। यह बल, शक्ति और प्राण की वृद्धि करता है। जीवन के दैनिक संघर्ष में कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति देता है। अमृतत्व प्राप्त करने को ब्रह्मचर्य ही आधार है। ब्रह्मचर्य से सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। इससे असीम बल, विशाल इच्छा-शक्ति, उत्तम विचार-शक्ति तथा स्मरण-शक्ति प्राप्त होते हैं।

जब आप किसी नाच पार्टी में उपस्थित होते हैं या जब 'मिस्ट्रीज़ आफ द कोर्ट आफ लन्दन' नामक पुस्तक का अध्ययन करते हैं तब आपके मन की क्या दशा होती है? जब आप तीर्थ या मन्दिरों में जाते हैं अथवा अपने धर्म के आत्मोद्बोधक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं तो आपकी मनोदशा किस प्रकार की होती है? इन दोनों मानसिक अवस्थाओं की तुलना कीजिए। स्मरण रखिए कि आत्मा का घोर पतन करने वाली कुसंगति से अधिक और कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य को स्त्रियों की चर्चा, धनी मनुष्यों के विलासमय जीवन, उत्तम भोजन, रेशमी वस्त्र, पुष्प, सुगन्ध आदि का मन में विचार ही नहीं लाना चाहिए; क्योंकि इससे मन को स्वभावतः उद्वेग होता है। मन विलासी पुरुषों के जीवन की नकल करने लगेगा। वासनायें उत्पन्न होने लगेंगी। अश्लील चित्र, असभ्य भाषण और प्रेम कथाओं के उपन्यास कामोद्दीपक होते हैं। इनसे हृदय में दूषित, हेय और अवांछनीय भाव उत्पन्न होते हैं। परन्तु भगवान् के चित्र के दर्शन तथा धर्मग्रन्थों का श्रवण तुरन्त ही हृदय में हर्षोद्रेक, मन में सुन्दर भाव और नेत्रों में प्रेमानन्दाश्रु पैदा करते हैं।

सुसंयमित नियमित जीवन बिताओ। नैतिक शक्ति ही आध्यात्मिक प्रगति का पृष्ठवंश है। नैतिक संस्कृति आध्यात्मिक साधना का अंग है। इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखो। मांस, मदिरा, स्त्रियों का सम्पर्क, जुआ, गप्प हांकना, झूठ बोलना, स्त्रियों की ओर देखना, परस्पर हाथापाई करना तथा दूसरों के साथ एक बिछौने पर सोना त्याग दो। विद्यार्थी को स्वप्न में वीर्य का क्षय नहीं होने देना चाहिए।

आजकल कालेज के विद्यार्थियों में आत्म-संयम नहीं है। विलासिता और संकीर्णता तो उनमें बचपन से ही प्रारम्भ हो जाती है। अभिमान, धृष्टता और अवज्ञा उनमें कूट-कूट कर भरे रहते हैं। सुन्दर आकर्षक पोशाक, अभक्ष्य भोजन, कुसंगति, नाटक-सिनेमा आदि ने उन्हें दुर्बल और कामुक बना डाला है। अर्वाचीन सभ्यता ने हमारे बालक-बालिकाओं को बिलकुल अशक्त बना दिया है। वे कृत्रिम जीवन यापन करते हैं। सिनेमा उनके लिए अभिशाप बन गया है। आजकल सिनेमाओं में रामायण और महाभारत की कहानियों के प्रदर्शन में भी अधिकतर असभ्य दृश्य तथा

धार्मिक जीवन यापन के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव हो सकता है। सात्त्विक आहार लीजिए। कुसंगति का परित्याग कीजिए। प्रतिदिन कुछेक आसन और प्राणायाम कीजिए। मन को सदा किसी न किसी उपयोगी काम में लगाए रखिये। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति प्रचुर मानसिक, शारीरिक तथा बौद्धिक कार्य कर सकता है। वह अपने सभी अध्यवसायों में सदा सफल होता है।

—:०:—

६. धर्म और वेदान्त

ईश्वर को जानना तथा उसकी उपासना के ा श्रद्धा रखना ही धर्म है। यह केवल में विचार विषय नहीं है। यह सत् आत्मा का साक्षात्कार यह मनुष्य की गम्भीरतम आकांक्षा की परि- ा है। धर्म सभी प्रकार के विधि और नियम ारे है। धर्म मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व को— के मस्तिष्क के गुण, हृदय के गुण तथा शारी- ़ शक्ति को विकसित एवं प्रशिक्षित करने वाला । तभी पूर्णता की प्राप्ति हो सकती है। एकांगी ास श्लाघनीय नहीं है।

मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्ध का स्पष्ट ज्ञान रखना सबों के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण। संसार के दार्शनिक, पैगम्बर, ऋषि, मुनि, विचारक आचार्य और आध्यात्मिक महापुरुषों ने मनुष्य ईश्वर और विश्व के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करने का प्रयास किया है। उन भिन्न भिन्न दार्शनिकों के अलग-अलग व्याख्याओं के परिणाम-स्वरूप अनेक दार्शनिक विचार-धाराओं का और विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ।

वेदान्त के अन्तर्गत सभी धर्म आ जाते हैं वह यह मानता है कि मोक्ष सब को मिल सकता है। प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष या आत्मसाक्षात्कार के पथ पर अग्रसर हो रहा है। नास्तिक, कट्टर भौतिकवादी तथा चार्वाक मतावलम्बी भी, जो ईश्वर का अस्तित्व तक नहीं मानते, मोक्ष से विमुख नहीं होते; क्योंकि वे लोग उन लोगों की अपेक्षा आत्मबोध और मानव-विकास की ओर में कहीं अधिक ऊँचे उठे होते हैं जो अपने मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेते और जिन्हें किसी नैतिक या धार्मिक प्रश्न का पता भी नहीं। वेदान्त आपको सिखाता है कि सबके साथ एकात्मता का अनुभव

करो। वह किसी को किसी विशेष संप्रदाय में परिणत करना नहीं चाहता। वह सब को केवल यही आदेश देता है कि अपने प्रति सच्चे रहो और मानव-विकास का चाहे जो मार्ग ग्रहण किये हुये हो, जहां भी हो, वहां से सत्य की खोज में अथक परिश्रम करते रहो।

वेदान्त वह निर्भीक शास्त्र है जो जीवन की एकता का पाठ पढ़ाता है। वह अधिकार पूर्वक यह घोषणा करता है कि जीव परमात्मा से अभिन्न है। केवल यही एकमात्र शास्त्र है, जो हिन्दू तथा मुसलमानों को, कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट को, आयरलैंडवासी तथा अंगरेज को, जैन और पारसी को, सबों में एक ही आत्मा के आधार पर एक ही मंच पर मिला सकता है और उनके हृदय में भी मेल करा सकता है। केवल यही शास्त्र ऐसा है जिसे यदि ठीक-ठीक समझ लिया जावे और अभ्यास किया जावे तो सब प्रकार के मतभेद, कलह और संघर्ष का अन्त हो सकता है जो भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और जातियों में चले आ रहे हैं।

जो दिव्य जीवन विश्व के एक अणु में रहता है वही सारे मनुष्यों के हृदय में भी निवास करता

है। चींटी की आत्मा मानव की आत्मा है। जो पापी की आत्मा है वही सन्त की आत्मा है। जो भिखारी की आत्मा है वही महान् शक्तिशाली सम्राट् की आत्मा है। हिन्दू की आत्मा और मुसलमान की आत्मा एक ही है। प्रकृति का परम सत्य ही मानवता का परम तत्त्व है। अपरोक्षानुभूति द्वारा इस आत्मा का साक्षात्कार करना आपके जीवन का परम लक्ष्य है।

सब के साथ एकता का अनुभव करो। सूर्य, आकाश, वायु, पुष्प, वृक्ष, पशु, पक्षी, पाषाण, सरिता, सरोवर और समुद्र इन सबके साथ अपनी एकता मानो। जीवन की एकता—चैतन्य की अविच्छिन्नता अनुभव करो। सब कहीं एक ही सामान्य आत्मा को सब प्राणियों में, पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-लतादिकों में देखो।

—:o:—

७. शान्ति

शान्ति जीवन्त सत्य है। हलचल, उपद्रव, संघर्ष तथा वाद-विवाद का अभाव ही शान्ति नहीं है। यह परिस्थितियों की वह अवस्था नहीं

है जिसमें से सभी अवांछनीय वस्तुओं को निकाल दिया गया हो। आप भले ही विषम परिस्थिति में पड़े हुये हों; आप आपत्ति, कष्ट, दुःख, क्लेश, कठिनाई तथा शोकों के बीच रहते हों फिर भी यदि आप इन्द्रियों को विषयों से हटा कर, मन को शान्त कर और उसकी मलिनताओं को दूर कर ईश्वर के आश्रित हो जायं तो आप आन्तरिक सुख और शान्ति का उपभोग कर सकते हैं। उभरते हुये विचारों को शान्त कर और कामनाओं, स्पृहाओं तथा इन्द्रिय लोलुपता को निकाल कर सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करो। घृणा, द्वेष, विषमता, संघर्ष तथा विनाश की तामसिक शक्तियों को दूर भगाओ। क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा—ये सब शान्ति से शत्रु हैं। सद्भाव, सहयोग, दया, करुणा, अहिंसा अथवा अप्रतिकार, क्षमाशीलता, सन्तोष, सज्जनता और विश्वप्रेम को बढ़ाओ। यदि आप स्वार्थ और अहंकार को उन्मूलित कर लेंगे तो आप चिन्ता, भय और उत्तरदायित्व से मुक्त रहेंगे।

धनी पुरुषों के पास अतुल संपत्ति होती है। उन्हें सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं और जीवन उनके लिये सुगम होता है। उनके पास सुन्दर

मोटर गाड़ियां, भव्य बंगले और वर्दीदार नौकर होते हैं। वे आनन्ददायक और स्वादिष्ट भोजन करते हैं और ग्रीष्मकाल में पर्वतों पर चले जाते हैं। फिर भी उनके चित्त को शान्ति नहीं मिलती। उनके जीवन में सरसता नहीं होती।

मनुष्य का सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य क्या है? इस बात से सभी सहमत हैं कि मनुष्य के सभी कार्यों का एकमात्र उद्देश्य परम शान्ति प्राप्त करना है।

शान्ति वह पूर्ण निस्तब्धता और निश्चेष्टता है जिसमें सारे मानसिक विकार, विचार, कल्पनायें, भाव, मुद्रायें, पशुवृत्तियां आदि बिलकुल बन्द हो जाते हैं। यह वह तात्कालिक मानसिक शान्ति नहीं है जिसके लिये संसारी मनुष्य लम्बी यात्रा से श्रान्त हो जाने पर आराम करने के लिये बंगले में चले जाते हैं और जिसे वे साधारण भाषा में शान्ति के नाम से पुकारते हैं। सारी सांसारिक कामनाओं का अन्त हो जाना चाहिये सारी इन्द्रियां पूर्णतः आपके संयम में हो जानी चाहिये और मन को शान्त कर देना चाहिये।

८. निःस्वार्थ सेवा

सामाजिक तथा धमर्थि संस्थाओं के द्वारा मानव-जाति की निःस्वार्थ सेवा, दरिद्रों को भोजन और वस्त्रदान, दीनों से सहानुभूति, रोगियों की परिचर्या, दुखियों को सान्त्वना देना, पतितों की सहायता करना, अनपढ़ों को विद्या-दान देना—इनमें किसी प्रकार के फल की इच्छा न रख कर यह भाव बनाये रखना कि आप भगवान् के हाथों में निमित्त मात्र हो। ये सब कर्म निष्काम कर्मयोग के अन्तर्गत हैं जो चित्तशुद्धि का सबसे सुगम साधन है।

मानव-जाति की सेवा भगवान की ही सेवा है। यदि आप भगवान् के इन प्रकट स्वरूपों से प्रेम नहीं कर सकते और उनकी सेवा नहीं कर सकते तो फिर आप संसार में भगवान को और किसी स्थान में कैसे ढूंढ सकोगे ?

ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो कि दुःखी जनों के प्रति निश्चित, गम्भीर और सक्रिय सहानुभूति दिखलाते हैं। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत भरे पड़े हैं जो केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट करते

हैं। क्रियात्मक निश्चित सहानुभूति वाला मनुष्य, जो कुछ भी उसके पास होता है, दीन-दुखियों को तुरन्त बांट देता है। उसका हृदय बड़ा कोमल होता है। जैसे ही वह किसी विपत्तिग्रस्त मनुष्य को देखता है, उसका हृदय द्रवित हो जाता है। वह दुखियों की वेदना को स्वयं ही अनुभव करने लगता है। जो केवल वाचिक सहानुभूति दिखाता है, वह पाखण्डी है।

अपने हृदय में प्रेम की ज्योति जगाओ। सबसे प्रेम करो। सर्वव्यापी, सर्वग्राही विश्वप्रेम का विकास करो। अपने प्रत्येक कर्म को शुद्ध प्रेम से भर दो। कुटिलता, लोभ और स्वार्थ को दूर कर दो। द्वेष, क्रोध और ईर्ष्या निरन्तर प्रेम पूर्ण हृदय से सेवा करते रहने से दूर किये जा सकते हैं। दयापूर्ण कर्म करते रहने से आपको अधिक शक्ति, प्रसन्नता और सन्तोष प्राप्त होगा। आपसे सब प्रेम करेंगे। दया, दान और निःस्वार्थ सेवा से हृदय शुद्ध और कोमल बनता है।

देश-सेवा, समाज-सेवा, माता-पिता और साधु-सन्तों की सेवा—ये सब निष्काम कर्मयोग हैं। किसी संस्था, आश्रम, मठ, धार्मिक संस्था

अथवा औषधालय में नित्य दो घंटे निष्काम्य भाव से किसी प्रकार की सेवा करो। ऐसा भाव रखो कि सारा संसार परमात्मा का विराट् रूप है। सदा दूसरों की सेवा के लिये उद्यत रहो। सेवा करने में प्रसन्नता का अनुभव करो। सेवा के लिये अवसर देखते रहो और अच्छी सेवा के लिये स्वयं क्षेत्र बनाओ। सेवा के फल की कभी अभिलाषा मत करो।

कर्मयोग के अभ्यास के लिये प्रचुर धन की अवश्यकता नहीं है। यदि व्यय करने को विशेष धन नहीं है तो आप अपने शरीर और मन से ही सेवा कर सकते हैं। यदि आपको सड़क के किनारे कोई दरिद्र रोगी पड़ा हुआ मिले तो उसे थोड़ा दूध या जल पीने को दो। उत्साहपूर्ण शब्दों से उसे प्रसन्न करो। उसे तांगे में बिठाकर निकट के अस्पताल में ले जाओ। परमात्मा धनी लोगों की दिखावटी आडम्बरपूर्ण सेवा से इतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि इस प्रकार की छोटी-छोटी सेवा से सन्तुष्ट होता है।

यदि किसी के शरीर में तीव्र पीड़ा हो रही है तो उसके पीड़ित अंग को धीरे-धीरे मलो।

यदि आप सड़क पर किसी मनुष्य अथवा पशु के शरीर से रक्त बहता हुआ देखो तो पट्टी बांधने के लिये कपड़ा ढूंढते हुये इधर-उधर मत भागो। अपनी चादर, धोती या कमीज में से तुरन्त कपड़ा फाड़ लो—वह चाहे कितना ही मूल्यवान् क्यों न हो और उसी से पट्टी बांध दो। यह सच्चा कर्मयोग है। आपके हृदय को परखने की यही कसौटी है। आप में से कितनों ने ऐसी उत्तम सेवा की है ?

जब कभी आपका पड़ोसी या निर्धन मनुष्य रोग से पीड़ित हो तो उसके लिये अस्पताल से औषधि ला दो। सावधानी से उसकी सुश्रूषा करो। उसके वस्त्र, बर्तन और कमोड आदि साफ कर दो। आपका मन समुन्नत होगा और तीव्र प्रेरणा प्राप्त होगी। इस प्रकार के कर्म आपको दया, करुणा, प्रेमादि सद्गुणों के विकास में और घृणा, द्वेष, ईर्ष्यादि के उन्मूलन में सहायक होंगे और आपको दिव्य बना देंगे। जब आप सड़क या बाजार में चलें तो थोड़े से खुले पैसे जेब में रखो और उन्हें गरीबों को बांट दो। रेलवे के प्लेटफार्म पर कुलियों से झगड़ा मत करो। उदार बनो।

आप में से प्रत्येक को रोगों और उनकी

चिकित्सा, प्रारम्भिक सहायता आदि का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होना चाहिये। यह ज्ञान आपको बहुत सहायक होगा। यदि आपको यह ज्ञान हो जावेगा तो आप स्वयं अपनी और कुछ अंशों में दुखी मानवता की सहायता कर सकेंगे। आकस्मिक संकट के समय डाक्टर की सहायता लेने से पूर्व यह आपका सहायक होगा। भगवान् आपके हृदय में दुःखित मानव समाज के कष्ट निवारण और निःस्वार्थ सेवा के लिये उत्कट कामना उत्पन्न करें!

—:o:—

९. उपदेश या अनुशीलन की शक्ति

जिन उपदेशों से दूसरों की हानि पहुँचने की सम्भावना हो, उनका प्रचार मत करो। यदि करोगे तो इससे आप उनका अपकार ही करोगे। बोलने से पहले अच्छी तरह सोच और समझ लो। अध्यापकों और चिकित्सकों को अनुशीलन-विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। इसके प्रयोग से वे विद्यार्थियों को सफलता पूर्वक शिक्षा दे सकते हैं और उन्हें उन्नत बना सकते हैं। माता-पिता को चाहिये कि वे अपने बालकों में साहस और

शौर्य भर दें। उन्हें ऐसा कहना चाहिये : "यह सिंह है। चित्र में सिंह को देखो। सिंह की भांति दहाड़ो। साहसी बनो। शिवा जी, अर्जुन अथवा क्लाइव के चित्र को देखो। इनके समान ही शूरवीर बनो।" पाश्चात्य देशों के अध्यापक गण विद्यार्थियों को युद्धक्षेत्र के चित्र दिखला कर कहते हैं : 'जेम्स देखो! यह निपोलियन का चित्र है। उसके शौर्य को देखो। क्या तुम सेनापति बनना नहीं चाहते?' वे शैशवास्था से ही बालकों के मन में साहस भर देते हैं। जब बालक बड़े होते हैं तो बाहरी प्रभावों से ये संस्कार उनमें और भी अधिक दृढ़ हो जाते हैं।

चिकित्सकों को अनुशीलन की विधि अच्छी तरह मालूम होनी चाहिये। सच्चे और सहानुभूति पूर्ण चिकित्सकों का आज प्रायः अभाव है। अनुशीलन की विधि से अज्ञ चिकित्सक लाभ के स्थान में हानि ही अधिक पहुँचाते हैं। कभी-कभी वे रोगियों को अनावश्यक डर दिखा कर ही मार डालते हैं। थोड़ी सी खांसी हुई तो डाक्टर कहता है : 'मित्र! आपको क्षय रोग है। आपको भवाली, कसौली अथवा मदनपल्ली में जाना चाहिये।

डाक्टर का कर्त्तव्य यह कहना है कि 'यह साधारण खांसी है। तुम कल सवेरे स्वस्थ हो जाओगे लो, यह औषधि सेवन करो।' डाक्टर के मुख से निकले हुये कोमल और उत्साहवर्द्धक शब्द रोगियों के लिये वरदान-स्वरूप है। ये शब्द पीड़ित रोगी में नव-बल, नवीन साहस और उत्साह का संचार करते हैं। किसी औषधि की सहायता के बिना ही रोगी इन मधुर शब्दों से ही ठीक होने लगता है। सम्भव है डाक्टर आपत्ति उठायें : 'स्वामी जी! यदि हम ऐसा करने लगें तो हमारा व्यवसाय नहीं चलेगा। हमें अपना चिकित्सालय बन्द करना पड़ेगा। आपका कथन ठीक नहीं है। हम इसका अनुमोदन नहीं कर सकते।'

इस पर मुझे यही कहना है कि 'यदि डाक्टर ऐसा व्यवहार करता है तो उसका व्यवसाय चमक उठेगा। वह अपने शहर का सर्वश्रेष्ठ डाक्टर बन जायगा। दयालु और सहानुभूतिपूर्ण डाक्टर को लोग हजारों की संख्या में घेरे रहेंगे। वे उसके लिये अपने जीवन तथा सर्वस्व को उत्सर्ग करने को तैयार रहते हैं। वह प्रचुर सम्पत्ति संचय कर सकता है। लोग स्वेच्छा से हार्दिक

प्रेम के साथ उसे प्रचुर धन देंगे। हे चिकित्सको! इस नियम को व्यवहार में लाओ और देखो कि आपको धन मिलता है या नहीं।'

हम विचारों से पूर्ण संसार में रहते हैं। हमारे चरित्र का निर्माण, दूसरों के सम्पर्क के कारण, अनजान में ही होता रहता है। जिनकी हम प्रशंसा करते हैं, उनकी क्रियाओं की हम अनजान में ही नकल करते हैं। प्रतिदिन हम जिन-जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, उनकी विचार-धारा को अपने में समाश्रित भी कर लेते हैं। साधारण विचारों से सम्पन्न व्यक्ति असाधारण विचारशील व्यक्ति के प्रभाव में आ जाता है।

घर का नौकर सदा अपने स्वामी की विचार-धारा के प्रभाव में रहता है। पत्नी अपने पति की विचार-धारा के प्रभाव में रहती है। रोगी डाक्टर की विचार-धारा के प्रभाव में रहता है। विद्यार्थी शिक्षक की विचार-धारा से प्रभावित रहता है। रीति-रिवाज इन विचारधाराओं के परिणाम हैं। क्या वस्त्र-धारण और क्या रहन-सहन अथवा भोजन या विहार सब कुछ प्रभाव-

शाली विचारधाराओं के परिणाम ही हैं। जिस व्यक्ति को विचार-धारा के प्रभाव का ज्ञान है वह जीवन में पूर्ण सफल होता है।

—:०:—

१०. विद्यार्थियों को उपदेश

१. प्रातः चार बजे उठ जाओ। सूर्योदय के समय तक न सोओ। प्रतिदिन अपना पाठ भली भांति पढ़ो।

२. आहार, खेल तथा शारीरिक व्यायाम में नियमित रहो।

३. अपने अध्यापक, माता-पिता तथा गुरु-जनों की सेवा करो और उनका सम्मान करो।

४. अपने बराबर वालों से, अपने से छोटों से तथा नौकरों से प्रेम करो।

५. सहपाठियों से कभी झगड़ा न करो।

६. थोड़ा बोलो। नम्रता से, धीरे-धीरे प्रेम पूर्वक मधुर सम्भाषण करो।

७. बहुत सावधानी से वीर्य की रक्षा करो। इस अमूल्य शक्ति की एक बूँद भी कृत्रिम उपायों से नष्ट न करो।

८. ब्रह्मचर्य के द्वारा तुम सारे संसार को जीत सकते हो।

९. सच्चा ब्रह्मचारी अपने सभी अध्यवसायों में सफल होता है।

१०. घर के तथा पड़ोस के रोगियों की सेवा करो।

११. सबों पर अनुग्रह करो।

१२. बड़ी सावधानी पूर्वक सच्चरित्रता, स्मृति और स्वास्थ्य का विकास करो।

१३. प्रतिदिन सोने से पूर्व और सोकर उठने के अनन्तर पन्द्रह मिनट तक भगवान् से प्रार्थना करो।

१४. धारणा तथा गम्भीर विचार का अभ्यास करो।

१५. प्रतिदिन कम से कम एक निष्काम सेवा का काम करो।

१६. संस्कृत पढ़ने में कभी भी असावधानी न करो।

१७. प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता का एक

१८. सिनेमा कभी न देखो।

१९. धूम्रपान तथा अन्य दुर्व्यसनों का प
त्याग करो।

२०. समय नष्ट न करो। सदा काम में ल
रहो। व्यर्थ की संगति का त्याग करो।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि अ
उपर्युक्त शिक्षाओं को व्यवहार में उतारेंगे
आपकी जीवनचर्या सुन्दर होगी और आप
जीवन में महान् सफलता प्राप्त होगी। आप
व्यक्तित्व आकर्षक होगा।

—:o:—

११. विद्यार्थियों की दैनन्दिनी

निम्नलिखित ढंग की एक दैनन्दिनी रखो
वह आपकी प्रगति और जीवन में त्वरित सफलत
की प्राप्ति में आपको बहुत सहायता देगी। यह
प्रतिदिन आपको अपने कर्त्तव्यों की याद दिलायेगी।
यह आपको पथ-प्रदर्शक और शिक्षक का काम
देगी।

१. सोकर कब उठे ?

२. कितनी देर तक भगवान् की प्रार्थना की ?

३. क्या पाठशाला का कोई काम अवशेष है ?

४. क्या आज आपने अपने माता-पिता और शिक्षक की आज्ञा भंग की ?

५. कितने घंटे गपमें या कुसंगति में बिताये ?

६. कौन-सी बुरी आदत को हटाने का प्रयास चल रहा है ?

७. कौन-से गुण का विकास कर रहे हो ?

८. कितनी बार क्रोध किया ?

९. क्या आप अपने वर्ग में समयनिष्ठ रहते हैं ?

१०. आज कौन-सी निस्स्वार्थ सेवा की ?

११. क्या आज धूम्रपान किया ? क्या सिनेमा देखा ?

१२. क्या खेल और शारीरिक व्यायाम में नियमित रहे और कितने मिनट । घंटे इसमें लगाया ?

१३. क्या अपने अन्तःकरण के विरुद्ध कोई कार्य किया ?

१४. क्या किसी को मन, वचन और कर्म

से हानि पहुँचाई ?

प्रतिदिन प्रत्येक प्रश्न के सामने अपना उत्तर तथा विवरण लिख दो। एक वर्ष के अनन्तर आप अपने में महान् परिवर्तन पायेंगे। आप पूर्णतः रूपान्तरित हो जायेंगे। दैनन्दिनी के पालन में नियमित रहो। अपना दैनिक कार्यक्रम निश्चित कर लो और उसमें प्रार्थना, व्यायाम, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से निस्स्वार्थ समाज-सेवा अथवा निर्धन विद्यार्थियों के अध्यापन आदि के लिए पर्याप्त समय निर्धारित करो। दैनिक कार्यक्रम और आध्यात्मिक दैनन्दिनी के पालन से आपकी आश्चर्यजनक रूप से उन्नति होगी।

—:•:—

स्वास्थ्य और व्यायाम

५

१. स्वास्थ्य और व्यायाम

अच्छा स्वास्थ्य आपकी सबसे बड़ी पूंजी है
स्वास्थ्य ही परम धन है। बल और स्वास्थ्य
बिना आप जीवन में सफलता और भगवत्-साद
त्कार प्राप्त नहीं कर सकते। यदि आप स्वस्थ न
हैं तो आप जीवन का आनन्द नहीं उठा स
हैं। कुछ निश्चित नियमों के सम्यक् परिपालन से
सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। जो लोग स्वास्
रक्षा में प्रमाद करते हैं, उन्हें बहुत दुःख झेल
पड़ता है और वे असमय में ही काल को
होते हैं।

वह अमूल्य पदार्थ कौन-सा है जो जीवन
सुखमय बनाता है? वह स्वास्थ्य है। क्या ३

आप 'शरीरमात्र' खलु धर्म साधनम्' का गीत गायेंगे? चरक संहिता कहती है, 'धर्मार्थकाम-मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।' 'रोगास्तस्यापहर्तारो श्रेयसो जीवतस्य च।'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधन के लिये सर्वोत्तम कारण स्वास्थ्य है। यही जीवनके कल्याण का भी कारण है। रोग इस स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले होते हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की ओर आपको सबसे पहले ध्यान देना चाहिये। प्रकृति और स्वास्थ्य के नियमों को अवहेलना पूवक भंग नहीं किया जा सकता। जो इन नियमों की अव-हेलना करते हैं वे असाध्य रोगों के शिकार बने रह कर आनन्दहीन जीवन विताते हैं।

संसार को अच्छे स्वास्थ्यपूर्ण लड़के और लड़कियों तथा दृढ़ और स्वस्थ नर-नारी की आव-श्यकता है। जिस भारत भूमि में भीष्म, भीम, अर्जुन, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, परशुराम और अनेकों पराक्रमी वीर हुये थे, जिस भूमि पर वीरता, साहस तथा शक्ति सम्पन्न अगणित राजा हुये थे आज वही देश स्त्रैण नपुंसक के

समान दुर्बल मनुष्यों से भरा पड़ा है। बालकों के भी सन्तान होने लगी है।

सारे स्कूलों तथा कालेजों में स्वास्थ्य-शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। इससे विद्यार्थियों का स्वास्थ्य सुधार होगा। नित्य व्यायाम होना चाहिये। उन्हें खेलों में भी भाग लेना चाहिये। उन्हें स्वच्छ वायु का सेवन करना चाहिये। थोड़े से सुगम आसनों का अभ्यास करना चाहिये; यथा—पद्मासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, वज्रासन, भुजंगासन, हलासन, अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन। सुखपूर्वक, शीतली और भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिये। विद्यालयों में कन्याओं को स्वच्छ वायु, खेल और स्वास्थ्य-शिक्षा के लिये सभी सुविधायें होनी चाहिये।

—:o:—

२. पद्मासन

पद्मासन का दूसरा नाम कमलासन भी है पद्मासन में आसन की आकृति कमल के समा हो जाने से इसका नाम कमलासन पड़ा है धारणा, ध्यान, जप तथा प्राथना के लिये यह

आसन पर बैठ कर टांगों को सामने फैला दो। तब दाहिना पैर मोड़कर बाईं जांघ पर और बायां पैर मोड़कर दाहिनी जांघ पर रख लो। हाथों को घुटनों पर रख लो। दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फंसा कर बायें पैर के टखने पर भी रख सकते हैं। साधारणतया बायां हाथ बायें घुटने पर और दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर रखते हैं।

—:०:—

३. सर्वांगासन

यह एक रहस्यपूर्ण आसन है, जिसके अभ्यास से आश्चर्यजनक लाभ होते हैं। इसे सर्वांगासन इस लिये कहते हैं, क्योंकि इस आसन को करते समय शरीर के सभी अंगों को व्यायाम करना पड़ता है।

एक मोटा कम्बल भूमि पर बिछा कर इस आसन का अभ्यास करना चाहिये। पीठ के सहारे चित लेट जाओ। अब धीरे-धीरे टांगों को उठाओ। टांगों के साथ-साथ कमर और धड़ यहां तक उठाओ कि सब एक सीध में खड़े हो जावें। अब दोनों हाथों से कमर को पीछे से

सहारा देकर रोक दो, जिससे कुहनियां भूमि पर टिकी रहें। ठोड़ी को छाती पर इस तरह लगा दो जैसे जालन्धर बन्ध में लगाई जाती है। शरीर को सीधा रखो, इधर-उधर हिलने-डुलने मत दो। पैर बिलकुल सीधे रखो। निर्धारित समय पूरा हो जाने पर बहुत धीरे-धीरे, बिना झटका दिये हुये, पैरों को नीचे लाओ।

इस आसन के करने में शरीर का सारा भार कन्धों पर पड़ता है। असल में कुहनियों और कन्धों के सहारे ही यह आसन किया जाता है। इस आसन को तुम शाम-सबेरे दोनों समय कर सकते हो। सर्वांगासन दो मिनट से आरम्भ करके धीरे-धीरे दस मिनट तक बढ़ा देना चाहिये। इस आसन को समाप्त करते ही तुरन्त मत्स्यासन करना चाहिये। सर्वांगासन करने से गर्दन के पीछे जो पीड़ा होने लगती है उसे मत्स्यासन दूर कर देता है और सर्वांगासन की उपयोगिता में वृद्धि करता है।

इस आसन से चुल्लिका नामक ग्रन्थि (**Thyroid Gland**) को बड़ा लाभ पहुँचता है। इसके स्वस्थ रहने से रक्त-संचार, श्वास-क्रिया, जठराग्नि और

स्नायु-केन्द्र आदि अपना काम ठीक-ठीक करते हैं। सर्वांगासन के अभ्यास से गर्दन की मांसग्रन्थि स्वस्थ रहती है और उसके स्वस्थ रहने से शरीर के सारे अंग अपना सब काम सुचारु रूप से करते हैं।

इस आसन के करने से मेरुदण्ड-स्थित स्नायुओं के मूल में बहुत अधिक परिमाण में रक्त पहुँच जाता है। इस आसन से मेरुदण्ड लचीला हो जाता है। मेरुदण्ड के लचीले रहने का फल है, चिरस्थायी युवावस्था। इस आसन से बुढ़ापे की आफतें दूर रहती हैं। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। यह आसन बड़ा ही रक्तशोधक और स्नायुओं का बलदाता है।

—:०:—

४. मत्स्यासन

प्लाविनी प्राणायाम करते हुये इस आसन को करने से अभ्यास करने वाला जल में तैरता रहता है। इसीलिये इस आसन का नाम मत्स्यासन पड़ा है।

कम्बल बिछा कर पद्मासन पर बैठ जाओ। तब कम्बल पर चित लेट जाओ। दोनों बाहों पर

सिर रख लो। यह पहली स्थिति है।

सिर को पीछे इतना ले जाओ कि एक तरफ भूमि पर सिर मजबूती से ठहर जाय और दूसरी तरफ नितम्ब-भाग जमीन पर रहे। इस भांति लेटने से सिर और नितम्बों के मध्य का शरीर पुल के डाट की तरह हो जायगा। अब हाथों को या तो जांघों पर रख दो या दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़ लो। इस तरह आसन लगाने से गर्दन पर बहुत मरोड़ पड़ेगा।

मोटे व्यक्ति जिनके टखने बड़े मोटे हों जिनके कारण उनसे पद्मासन न लगता हो तो ऐसे लोग साधारण पलथी मार कर इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं। दस सेकण्ड से आरम्भ करके इस आसन का समय पांच मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। आसन कर चुकने के बाद हाथों के सहारे सिर को धीरे-धीरे ढीला करके बैठ जाओ और फिर पद्ममासन खोल दो। इस आसन का अभ्यास सर्वांगासन के बाद ही करना चाहिए।

सर्वांगासन के अभ्यास से गर्दन और कन्धे जो कड़े पड़ जाते हैं, उनकी इस आसन से स्वाभाविक

ही मालिश-सी हो जाती है। मत्स्यासन करते रहने से बहुत से रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। यह कोष्ठबद्धता दूर करता है। मत्स्यासन के करने से सर्वांगासन का अधिक से अधिक फल मिलता है।

—:o:—

५. पश्चिमोत्तानासन

जमीन पर बैठ कर अपने पैरों को फैला कर लकड़ी की तरह कड़ा करो। उसके बाद पैरों के अंगूठों को हाथ के अंगूठे, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से पकड़ो। ऐसा करने से धड़ को आगे झुकाना पड़ेगा। पहले सांस को निकाल दो तब झुको। तुम चेहरे को दोनों घुटनों के बीच में ले जा सकते हो। इस स्थिति में पांच सेकण्ड तक रहो और तब धीरे-धीरे ऊपर उठो और हाथ को छोड़ दो।

इस आसन के अभ्यास से पेट की चर्बी कम हो जाती है। मोटापा तथा बढ़ी हुई तिल्ली और जिगर के लिए तो यह आसन अचूक दवा है। इस आसन के अभ्यास से मलबद्धता, यकृत की

सुस्ती, वमन और मन्दाग्नि दूर हो जाते ह
इससे पसलियां लचीली बनती हैं।

—:o:—

६ वज्रासन

यह आसन मुसलमानों के नमाज़ पढ़ने
समय के आसन से बहुत कुछ मिलता है। पैर
तलवों को गुदा के दोनों ओर रक्खो अर्थात् दो
जांघों को दोनों टांगों पर रक्खो और नितम
को तलवों पर। अंगूठे से लेकर घु
तक का भाग जमीन को छूता रहे। शरीर
सारा बोझ घुटनों और टखनों पर पड़ता है। दो
हाथों को सीधे घुटनों पर रक्खो। घुटने बिलकु
पास रक्खो। इस प्रकार धड़, गर्दन और ि
एक सीधी रेखा में करके बैठो। यह आमाशय
सारे विकारों को दूर करता और जठराग्नि
उद्दीप्त करता है।

—::o—

७. भुजंगासन

जमीन पर कम्बल बिछा कर पीठ को ऊपर
कर मुंह के बल लेट जाओ। सब पेशियों को

ढीला छोड़ दो। आराम से पड़े रहो। हथेलियों को ठीक कन्धों के नीचे जमीन पर रक्खो। शरीर को, सिर से पैर के अंगूठे तक जमीन छूता रहने दो। जिस प्रकार सांप फन उठाता है ठीक उसी प्रकार धीरे-धीरे सिर और शरीर के ऊपरी भाग को ऊपर उठाना प्रारम्भ करो। रीढ़ को पीछे की ओर झुकाओ। अब सिर को फिर धीरे-धीरे नीचे झुका कर पहली अवस्था में लाओ। इसे छः बार दुहराओ। यही भुजंगासन है।

कोष्ठबद्धता, पीठ का दर्द तथा कमर का दर्द दूर करने के लिए यह बहुत उत्तम आसन है। भुजंगासन और सर्वांगासन बहुत ही सरल और प्रभावशाली आसन हैं।

—:०:—

८. हलासन

जमीन पर एक कम्बल बिछा लो। पीठ के सहारे चित लेट जाओ। दोनों हाथ दोनों बगलों में इस प्रकार सीधे रहें कि हथेलियां जमीन छूती रहें। अपनी दोनों टांगों को सटा दो। अब धीरे-धीरे अपनी दोनों टांगों को उठाओ। पैर मुड़ने न पायें। इसके करने की विधि सर्वांगासन के

समान ही है ; परन्तु इसमें पैरों को सिर की ओर लाकर इतना झुकाना होता है कि पैरों के अंगूठे जमीन छू लें। टांगें और जांघें एक सीध में रहना चाहिये। ठोड़ी छाती से लगी रहनी चाहिये। इस समय नाक से धीरे-धीरे सांस लेते रहो। इस प्रकार जब पैर के अंगूठे जमीन का स्पर्श करें तब धीरे-धीरे हाथों को अपनी जगह से हटा कर उनसे पैर के अंगूठों को पकड़ लो। इस आसन को करते समय शरीर की आकृति किसान के हल की तरह हो जाती है। इसी से इसका नाम हलासन पड़ा है।

इस आसन से मेरुदण्डस्थित स्नायुमूलों, मेरु-दण्ड की रज्जु और पीठ की मांशपेशियों में बड़ी मात्रा में रक्त का संचार होता है, जिससे वे सब अच्छी तरह पुष्ट हो जाते हैं। इस आसन के करने से मेरुदण्ड बड़ा मुलायम और लचीला हो जाता है। हलासन के अभ्यास से शरीर बहुत ही लचीला, फुर्तीला और चपल हो जाता है। इसके अभ्यास से वे सभी लाभ प्राप्त होते हैं जो कि सर्वांगासन से होते हैं। यह चिरकालिक मन्दाग्नि, यकृत और प्लीहा रोग में विशेष लाभदायी है।

—:o:—

९. अर्द्धमत्स्येन्द्रासन

पश्चिमोत्तानासन और हलासन से रीढ़ आगे की ओर मुड़ती है। धनुरासन और भुजंगासन रीढ़ को पीछे की ओर मोड़ते हैं। अर्द्धमत्स्येन्द्रा-सन करने पर रीढ़ पर बगल में झुकाव पड़ता है।

पैरों को फैला कर सीधे बैठो। बायें पैर की एड़ी को गुदा-द्वार पर रक्खो। दाहिने पैर की एड़ी को बायें घुटने के दूसरी ओर जमीन पर रक्खो। अब दायें घुटने को ऊपर उठा कर बाईं कांख से लगा दो और बायें हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ो। अब शरीर को अच्छी तरह मोड़ो और दायें हाथ को पीठ की ओर, जितना हो सके, ले जाओ और बाईं जंघा को पकड़ने का प्रयास करो। रीढ़ को मरोड़ सकने पर ही इस आसन का अभ्यास किया जा सकता है। इस आसन में पाँच सेकण्ड रहो। इस प्रकार दूसरी ओर भी करो।

यह रीढ़ को लचीला बनाता है और पेट के अंगों को मलता है। दुबले लोगों के लिये यह बहुत ही उत्तम आसन है।

—:o:—

१०. शिथिलीकरण

प्रातः, दोपहर और सायंकाल को कम से कम
मिनट के लिये शरीर और मन को पूर्णतः
थल कर दो। आरामकुर्सी पर बैठ जाओ या
अथवा चटाई पर लेट जाओ। सारी मांस-
ियों को ढीली छोड़ दो। नेत्र बन्द कर लो।
को शून्य बना लो। एक ओर को करवट
र जितना हो सके शिथिल हो जाओ। किसी
ा में खिंचाव न डालो। फिर दूसरी ओर
वट लेकर शिथिल हो जाओ। सोते समय
ी स्वभावतः ऐसा करते हैं।

व्यायाम के बाद शिथिलीकरण आवश्यक है।
ससे शरीर तथा मन दोनों को ही आराम मिलता
। मांसपेशियों का तनाव दूर हो जाता है। इससे
न स्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

—:•:—

११. सुखपूर्वक प्राणायाम

प्राण और शरीर की शक्ति प्राणायाम द्वारा
ंचित होती है। प्राणायाम का उद्देश्य प्राण को
नयन्त्रि
े मन

समस्त शरीर तथा अंगों का व्यायाम हो जाता है। प्राणायाम से स्वास्थ्य उत्तम और मन निर्मल हो जाता है।

पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जाओ। दाहिने अंगूठे से दाहिनी नासिका को बन्द करो। बाईं नासिका से बहुत ही धीरे-धीरे सांस खींचो। दाहिने हाथ की कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियों से बाईं नासिका को बन्द करो। जितनी देर तक सुखपूर्वक हो सके श्वास रोके रक्खो। अब अंगूठे को हटा कर बहुत ही धीरे-धीरे दाईं नासिका से श्वास छोड़ो। अब आधी क्रिया समाप्त हो गई। इसी प्रकार दाईं नासिका से श्वास खींचो। पूर्ववत् श्वास को रोको और बाईं नासिका से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास को छोड़ो। इन छः क्रियाओं का एक प्राणायाम बनता है।

सुखपूर्वक प्राणायाम से शरीर बलवान् और स्वस्थ बनता है। मोटापा दूर होता है। मुख पर कान्ति और नेत्रों में ज्योति बढ़ती है। गले और स्वर में मधुरता आ जाती है। ब्रह्मचर्य पालन में यह अत्यन्त सहायक होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। नाड़ी शुद्ध होती है।

—:०:—

१२. शीतली प्राणायाम

जिह्वा को होठों के बाहर निकाल करके नली की भांति मोड़ लो। सिसकारी भरते हुये मुँह से भीतर सांस खींचो और आराम से जितनी देर हो सके वायु भीतर रोके रहो। फिर दोनों नासा-रन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो। प्रातः काल पन्दरह से तीस बार इसका अभ्यास करो। यह प्राणायाम पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन पर या चलते-फिरते एवं खड़े होकर किया जा सकता है।

इससे रुधिर शुद्ध होता है। भूख और प्यास कम होती है और अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं।

—:०:—

१३. भस्त्रिका

संस्कृत शब्द भस्त्रिका का अर्थ भाथी या धौंकनी है। भाथी की तरह से जोर-जोर जल्दी श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका प्राणायाम है।

पद्मासन पर बैठ जाओ। शरीर और गर्दन को एक सीध में रक्खो। मुँह को बन्द कर लो।

लुहार की भाथी की भांति दस बार तीव्र गति से श्वास खींचो और बाहर निकालो। बारम्बार छाती को फैलाओ और सिकोड़ो। इस प्राणायाम के समय सिसकार का शब्द होता है। एक के अनन्तर एक श्वास लेते जाओ और निकालते जाओ। बीच में रुको नहीं। जब श्वास निकालने की निश्चित् संख्या पूरी हो जाय तो अन्तिम वहिष्करण (रेचक) के बाद अधिक से अधिक गहरी श्वास लो। सुविधा पूर्वक जितने समय तक हो सके श्वास को रोको तब गम्भीरतम श्वास बाहर निकालो। इस प्रकार एक प्राणायाम हुआ। सायं प्रातः इसे तीन-चार बार करना चाहिये।

इससे गले की सूजन दूर होती है। नाक और छाती की व्याधियां नष्ट होती हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। कफ का विकार नष्ट होता है। इससे शरीर को गर्मी पहुँचती है। इसका अभ्यास करने वाला सदा स्वस्थ रहता है।

—:o:—

१४. स्वास्थ्य और बल

स्वास्थ्य शास्त्र का नियम न भूलो ।
स्वास्थ्य की रक्षा विधि से कर लो ।
रोग-निवृत्ति से संयम हितकर ।
तन में रोग न करने दो घर ॥

रोग है परम शत्रु स्वास्थ्य का ।
स्वास्थ्य है साधन ईश प्राप्ति का ।
सबल स्वस्थ निज तन को रख लो ।
इक उपवास माह में रख लो ।
दूध और फल पर चाहे रह लो ॥

जो कुछ खाओ खूब चबाओ ।
मादक वस्तु के पास न जाओ ।
भोजन तुला हुआ नियमित हो ।
भोजन अति सात्त्विक परिमित हो ॥

रात्रि शयन में देर न करना ।
पहर रात रहते उठ जाना ।
मलावरोध होने नहिं देना ।
नियम प्रकृति का पालन करना ।
प्रातः स्नान शीतल जल से करना ।
पहर रात गये पेट न भरना ॥

प्रातःकाल धूप का सेवन।
खुली वायु में कीजे धावन।
खूब टहलना कसरत करना।
आसन प्राणायाम भी करना॥

लक्षण रोग निदान समझ लो।
अपना वैद्य स्वयं ही बन लो।
अपने तन का रोग समझ लो।
दूर हटा कर सुख से रह लो।
सेवा दीन-हीन रोगी की।
अमिय भूरि है चित्तशुद्धि की॥

जीवन शुद्ध सरल सात्त्विक हो।
किन्तु विचार उन्नत परमार्थिक हो।
ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना।
हरि सुमिरण जप ध्यान भी करना।
नियमित जो तुम इसे करोगे।
शाश्वत सुख अमरत्व लहोगे॥

—:o:—

१५. दिव्य आह्वान

पुण्यभूमि भारत के बच्चो
छात्रवृन्द हे पाठ-भवन के
तुम्हीं देश के तारे आशा
सबल चरित्र शरीर बना लो।
जागृत कर लो धर्म-भावना
भक्ति-भाव उर बीच जगाओ
बन लो सच्चा योगी ज्ञानी
कहां सांख्य सक्रिय जीवन बिन ?
सेवा करो दीन दुखियों की
धर्म सनातन अपना रख लो
रक्षा करो शास्त्र अचला की
पढ़ो शास्त्र तुम, शास्त्र सिखाओ।
दिव्य बनो तुम पावन रह के
न्यायशील धार्मिक सच्चे तुम
चलो सत्य की लिये पताका
तुम ज्वलन्त योगी-सा रह लो।
करो न निन्दा किसी धर्म की
लेकर सार सभी धर्मों का
सभी सन्त का आदर कर लो
हो समदृष्टि उदार तुम्हारी।

—:•:—

परिशिष्ट

१. विद्यार्थी जीवन का महत्व

प्रिय अमृत पुत्र !

आप मातृभूमि की भावी आशा हैं। आप कल बनने वाले नागरिक हैं। आपको सर्वदा जीवन के लक्ष्य पर विचार करना चाहिये और उसे प्राप्त करने के लिये ही जीवन बनाना चाहिये। जीवन का लक्ष्य है सर्व दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति अथवा कैवल्यपद की प्राप्ति या जन्म-मरण से छुटकारा।

सुव्यवस्थित नैतिक जीवन यापन कीजिये। नैतिक बल आध्यात्मिक उन्नति का पृष्ठवंश है। चारित्र्य-गठन आध्यात्मिक साधना का एक मुख्य अंग है। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये। ब्रह्मचर्य के पालन से अनेकों पूर्वकालीन ऋषियों ने अमृतत्व प्राप्त किया था। यह नवीन शक्ति, वीर्य, बल, जीवन में सफलता और जीवन के उपरान्त नित्य

सुख का स्रोत है। वीर्य के नाश से रोग, क्ले
और अकाल मृत्यु प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये वी
रक्षा के लिये विशेष सावधान रहो।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से अच्छा स्वास्थ्य, आन
रिक शक्ति, मानसिक शान्ति और दीर्घ जी
प्राप्त होते हैं। यह मन और स्नायुओं को स
बनाता है; शारीरिक और मानसिक शक्ति
संचय में सहायता देता है। यह बल और सा
की वृद्धि करता है। इससे जीवन के दैनिक संग्र
में कठिनाइयों का सामना करने के लिये
प्राप्त होता है। पूर्ण ब्रह्मचारी विश्व पर शासन
सकता है। वह ज्ञानदेव के समान पंचतत्त्वों त
प्रकृति को नियन्त्रित कर सकता है।

वेदों में तथा मन्त्रों की शक्ति में श्रद्धा बढ़ा
नित्यप्रति ध्यान का अभ्यास करो। सात्त्विक भो
करो। पेट को ठूँस-ठूँस कर मत भरो। अ
भूलों के लिये पश्चात्ताप करो। मुक्त हृदय से अ
भूलों को स्वीकार करो। झूठ बोलकर या ब
बना कर अपनी भूल को छिपाने की कभी
मत करो। प्रकृति के नियमों का पालन क
नित्यप्रति खूब शारीरिक व्यायाम करो। श

कर्त्तव्यों का पालन यथा-समय करो। सरल जीवन और उन्नत विचारों का विकास करो। वृथा अनुकरण करना छोड़ दो। कुसंगति से जो बुरे संस्कार बन गये हों, उनकी काया-पलट कर दो। उपनिषद्, योगवाशिष्ठ, ब्रह्मसूत्र, श्री शंकराचार्य के ग्रन्थ तथा अन्य शास्त्रों का स्वाध्याय करो। इनसे आपको वास्तविक शान्ति और सान्त्वना प्राप्त होगी। कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों ने यह उद्गार प्रकट किया है : 'जन्म और धर्मानुसार हम ईसाई हैं ; किन्तु जिस शान्ति को हमारा मन चाहता है, वह शान्ति उपनिषदों के अध्ययन से ही मिल सकती है।'

सबके साथ मिल कर रहो। सब से प्रेम करो। अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करो और निःस्वार्थ सेवा का भाव विकसित करो। अथक सेवा के द्वारा सबों के हृदय में प्रवेश करो। अद्वैत प्रतिपादित आत्मा की अभिन्नता के साक्षात्कार का यही उपाय है।

—:०:—

२. आध्यात्मिक शिक्षा का महत्व

प्रिय अमर आत्मन् !

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप लोगों में से बहुतों ने दिव्य जीवन संघ की परीक्षा में भाग लेकर आध्यात्मिक शिक्षा में अपनी बहुत ही रुचि प्रदर्शित की है। पारितोषिक वितरण के इस शुभ अवसर पर आप सबों को यह छोटा-सा सन्देश भेजने में मुझे अतीव हर्ष हो रहा है।

प्रिय छात्रगण ! आज के स्कूल तथा कालेजों की धर्मनिरपेक्ष शिक्षा तथा हमारे ऋषियों की प्राचीन शिक्षा के अन्तर पर ध्यान दो। देखो ! ऋषिगण किस प्रकार सत्य के दिव्य उद्घोष के साथ उपनिषदों को आरम्भ करते थे। छांदोग्य उपनिषद् की उक्ति है : 'आरम्भ में एकमेव सत् ही था।' ईशावास्योपनिषद् की प्रारम्भिक पंक्ति है : 'यह अखिल विश्व ईश्वर से ही अन्तर्व्याप्त है। नामरूपों का निराकरण कर आत्मा में ही आनन्द को प्राप्त कीजिये। किसी की सम्पत्ति का लोभ न कीजिये।' मेरे प्रिय नवयुवको ! आज के स्कूल तथा कालेजों में ऐसी शिक्षा कहां है ?

यह शोचनीय है कि भारत की वर्त्तमान शिक्ष प्रणाली आध्यात्मिक विकास के लिये अहितक है। विद्यार्थियों के हृदय एवं मस्तिष्क भौतिकवा से भरे रहते हैं। नवयुवको ! तुम शास्त्र त अपने धर्म के अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय पूर्ण श्र और भक्ति के साथ करो।

देखो ! पूर्वकालीन ऋषि अपने शिष्यों व कैसे स्वर्णिम उपदेश देते थे। 'सत्य बोलो। धर्म चरण करो। वेदों के स्वाध्याय में प्रमाद मत करो सत्य से मत डिगो। धर्म से मत हटो। अप कल्याण से मत चूको। देवताओं और पितरों वे प्रति अपने कर्त्तव्य में प्रमाद मत करो। मात को देवता समझो। पिता को देवता समझो आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवत समझो। कलंक-रहित कर्म करो, दूसरे नहीं सत्कर्म करो। श्रद्धा, आनन्द और विनय सहित दान दो।'

भौतिकवादी सभ्यता की भद्दी नकल करना छोड़ दो। सच्ची भारतीय संस्कृति को अपने आचार में व्यक्त करो। आजकल विद्यार्थियों ने अपने

चार तथा सन्ध्या-वन्दन को भुला दिया है। उनके मन में विलासिता का विष भरा हुआ है। उनका तो सिद्धान्त यही हो गया है : 'खाओ, पियो और मौज उड़ाओ।' बेचारे भ्रांत जीवो! कब तक इस अवस्था को बनाये रक्खोगे? आत्मा की हत्या मत करो। उठो! जागो! अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाओ। नियमित रूप से सन्ध्या करो। श्रद्धापूर्वक उपासना करो और दिव्य वैभव को प्राप्त करो।

मेरे प्रिय विद्यार्थियो! देश की आशा और यश की मूर्तियो! अपने नेत्र खोलो! अभिमानी मत बनो। ईश्वर और मन्त्रों की शक्ति में विश्वास बढ़ाओ। 'जपयोग' की पुस्तक पढ़ो। रामायण, महाभारत, गीता और भागवत का स्वाध्याय करो। सात्त्विक भोजन करो। पेट को ठूँस-ठूँस कर मत भरो। बीस आध्यात्मिक नियमों का पालन करो। आध्यात्मिक विषयों में गहरी रुचि लो। आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो। जब आप बड़े हों तो सच्चे भक्त और योगी बनें और आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाश को सारे देश में विकीर्ण करें।

आप सब दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण हों! आप सब साक्षात्कार-प्राप्त सन्त तथा कर्मयोगी बनें और मानवता की सेवा में आनन्द लें! भगवान् आपको सभी कामों में सफलता प्रदान करे! भगवान् श्री ललिता प्रसाद जी तथा शिक्षकों पर अपने आशीर्वाद की वृष्टि करे जिन्होंने इस प्रशंसनीय परीक्षा की योजना के सम्बन्ध में घोर श्रम किया है! मैं सबों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

—:o:—

३. चरित्र का महत्व

प्रिय अमर आत्माओ!

आपको अपना चरित्र ठीक बनाने में पूरी चेष्टा करना उचित है। आपका सारा जीवन और जीवन की सफलता आपके चारित्र्य गठन पर निर्भर करता है। संसार के सारे महान् पुरुषों ने केवल चारित्र्य के बल से ही महत्व प्राप्त किया है। संसार की देदीप्यमान् प्रोज्वल आत्माओं ने यश, ख्याति और सम्मान केवल चरित्र के द्वारा ही प्राप्त किया है।

स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन तथा भौतिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक समस्त

क्षेत्रों में सम्पूर्ण सफलता का रहस्य केवल वीर्य-रक्षा है। धन्वन्तरि ने जब अपने शिष्यों को समस्त आयुर्वेद पढ़ा दिया तो उन सब ने इस विज्ञान की कुञ्जी पूछी। धन्वन्तरि ने उत्तर दिया : 'मैं आपसे कहता हूँ कि निस्सन्देह ब्रह्मचर्य ही एक अमूल्य रत्न है। यह एकमात्र अमोघ औषधि, नहीं-नहीं अमृत है, जो रोग, क्षय और मृत्यु को नष्ट करता है। शान्ति, कान्ति, स्मृति, विद्या, स्वास्थ्य और ईश्वर-दर्शन के लिये मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये क्योंकि यही सर्वोच्च धर्म है। ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा बल है। आत्मा अथवा पर-मात्मा का रूप ब्रह्मचर्य ही है और यह आत्मा ब्रह्मचर्य में ही निवास करती है। सबसे पहले ब्रह्मचर्य को ही प्रणाम करके मैं असाध्य रोगियों को भी स्वस्थ और निरोग कर देता हूँ। हाँ, ब्रह्मचर्य समस्त दोषों को दूर कर सकता है।'

मेरे प्रिय नवयुवको ! देश की आशा और यश की मूर्त्तियो ! अपनी आँखें खोलो। अब जाग जाओ। चतुर बनो। कुसंग से बचो। स्त्रियों से विनोद-परिहास मत करो। इस बुरी आदत को तुरन्त छोड़ दो। यदि यह अभ्यास नहीं छोड़ोगे तो अपना सर्वनाश कर लोगे। शुद्ध दृष्टि का अभ्यास

करो। अब तक आप अन्धे बने हुये थे; परन्तु अब तो प्रकाश मिल गया। देखो! प्रार्थना करो। आप विघ्न-बाधाओं को जीत लेंगे।

सद्गुणों का विकास करो। शक्ति संग्रह करो। सच्चे हृदय और तीव्र लगन से भगवत्प्राप्ति की इच्छा करो। लक्ष्य को मन के सामने रखो। वेदों में और मन्त्र-शक्ति में विश्वास रखो। नित्य सन्ध्या और गायत्री का जप करो। ध्यान करो। इसकी (ध्यान की) सामर्थ्य और शक्ति को समझो और प्राप्त करो। किसी न किसी प्रकार की उपासना करो और आत्मज्योति प्राप्त करो। अपनी खोई हुई दिव्यता को पुनः हस्तगत करो।

भगवत्कृपा से आपके मुखों पर दिव्य तेज का प्रकाश उदित हो! ज्योति स्वरूप परमात्मा आपकी बुद्धि को सन्मार्ग दिखलाये! आप सब श्री श्रीनिवास राघवाचार्य के शुभ कार्य में हृदय और मन से पूर्ण सहयोग दें और इस शाखा को सक्रिय केन्द्र बनावें जहां से शान्ति, सुख और परमानन्द चतुर्दिक विकीर्ण हो! दिव्य शक्ति और शान्ति सदा आप में निवास करें!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!

—:०:—

करो। अब तक आप अन्धे बने हुये थे; पर
अब तो प्रकाश मिल गया। देखो! प्रार्थना करो
आप विघ्न-बाधाओं को जीत लेंगे।

सद्गुणों का विकास करो। शक्ति संग्रह करो
सच्चे हृदय और तीव्र लगन से भगवत्प्राप्ति
की इच्छा करो। लक्ष्य को मन के सामने रखो
वेदों में और मन्त्र-शक्ति में विश्वास रखो। नित्य
सन्ध्या और गायत्री का जप करो। ध्यान करो
इसकी (ध्यान की) सामर्थ्य और शक्ति को समझो
और प्राप्त करो। किसी न किसी प्रकार की उपासना
करो और आत्मज्योति प्राप्त करो। अपनी खोई
हुई दिव्यता को पुनः हस्तगत करो।

भगवत्कृपा से आपके मुखों पर दिव्य तेज का
प्रकाश उदित हो! ज्योति स्वरूप परमात्मा आपकी
बुद्धि को सन्मार्ग दिखलाये! आप सब श्री
श्रीनिवास राघवाचार्य के शुभ कार्य में हृदय और
मन से पूर्ण सहयोग दें और इस शाखा को सक्रिय
केन्द्र बनायें जहां से शान्ति, सुख और परमानन्द
चतुर्दिक विकीर्ण हो! दिव्य शक्ति और शान्ति
सदा आप में निवास करें!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!

—:०:—

आदर्श को सदा अपने मन के सामने रक्खो। नित्यप्रति सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो। मानवता की आत्मभाव से सेवा करो। सभी प्राणियों के प्रति समदृष्टि रक्खो। चित्तशुद्धि प्राप्त करो और क्रोध तथा अहंकार से मुक्त बनो। जिह्वा निरन्तर प्रभु के नाम का उच्चारण करे। नेत्र भगवान् की मधुर मूर्त्ति के दर्शन करें। कान उन प्रभु की अलौकिक लीलाओं को श्रवण करें। आपके हाथ दिन-रात्रि उनकी सेवा में लगे रहें। भगवान् के प्रेम में आप सदा मग्न रहें। भगवान् के निष्कपट प्रेम और निष्काम्य भक्ति से बढ़कर इस संसार में अन्य कोई भी सम्पत्ति नहीं है।

समदृष्टि ही ज्ञान की परख है। निष्कामता ही धर्म की परख है। ब्रह्मचर्य ही सदाचार की परख है। एकता ही आत्मसाक्षात्कार की परख है। नम्रता ही भक्ति की परख है। अतः निःस्वार्थ, नम्र तथा शुद्ध बनिये। समदृष्टि का विकास कीजिये। असीम के साथ एक बन जाइये।

हे मित्र! जागिये। अधिक न सोइये। ध्यान कीजिये। ब्रह्ममुहूर्त्त की वेला है। प्रेम की कुञ्जी से हृदय-मन्दिर के द्वार खोलिये। आत्मसंगीत श्रवण

कीजिये। अपने प्रियतम को प्रेम-संगीत सुनाइये। असीम की तान छेड़िये। उनके ध्यान में अपने को विलीन कर डालिये। उनके साथ एक बन जाइये। प्रेम तथा आनन्द के सागर में निमग्न हो जाइये।

—:६:—

५. सेवा के लिए जीवें

मुझे 'ऐम्बुलेंस कोर' को यह सन्देश भेजने में अतीव हर्ष हो रहा है : क्योंकि मुझे इस प्रकार के सेवा-कार्यों में विशेष रुचि है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम्य सेवा बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तात्कालिक आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिये निष्काम सेवा निश्चय ही बहुत आवश्यक है। सफल जीवन की प्राप्ति में आप लोगों का यह प्रयास निश्चय ही ठीक दिशा में है।

'बाम्बे ऐम्बुलेंस' अपनी कई विशेषताओं के

कीजिये। अपने प्रियतम को प्रेम-संगीत सुनाइये। असीम की तान छेड़िये। उनके ध्यान में अपने को विलीन कर डालिये। उनके साथ एक बन जाइये। प्रेम तथा आनन्द के सागर में निमग्न हो जाइये।

—:६:—

५. सेवा के लिए जीवें

मुझे 'ऐम्बुलेंस कोर' को यह सन्देश भेजने में अतीव हर्ष हो रहा है; क्योंकि मुझे इस प्रकार के सेवा-कार्यों में विशेष रुचि है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम्य सेवा बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तात्कालिक आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिये निष्काम सेवा निश्चय ही बहुत आवश्यक है। सफल जीवन की प्राप्ति में आप लोगों का यह प्रयास निश्चय ही ठीक दिशा में है।

'बाम्बे ऐम्बुलेंस' अपनी कई विशेषताओं के

कारण एक अनुपम संस्था है। गत चौदह वर्षों में इसने बहुत ही उल्लेखनीय सेवायें की हैं। निश्चय ही यह बम्बई निवासियों के लिये वरदान स्वरूप है।

आवश्यक सद्गुणों के विकास के लिये कर्मयोग का अभ्यास बहुत ही आवश्यक है। कर्मयोग के अभ्यास से ही इनका विकास सम्भव है। इन गुणों से सम्पन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति भगवत्-साक्षात्कार अथवा वेदांत की एकता की भावना की प्राप्ति की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। सहनशीलता, दया, करुणा आदि प्रयोजनीय गुण हैं। कर्मयोग के अभ्यास से ही इन गुणों का विकास सम्भव है। नये हीरों को, इसके असली प्रकाशपूर्ण रंग लाने से पूर्व भली भांति काटने, पालिश करने तथा खरादने की आवश्यकता होती है। इसी भांति नये साधकों को लगातार रगड़ खाने अथवा भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आने की आवश्यकता होती है। यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह सब लोगों को प्रसन्न रख सकता है, यदि वह नगर की चहल-पहल में भी अपनी मुख-मुद्रा को प्रसन्न बनाए रख सकता है तथा गंभीर

ध्यान और समाधि में प्रवेश कर सकता है तो स्पष्ट है कि वह बाह्य परिस्थितियों से ऊपर उठ चुका है तथा मन की समता में स्थित हो गया है।

जब पास-पड़ोस के लोग कष्ट और पीड़ा से कराह रहे हों, जब लोगों का प्राणसंकट उपस्थित हो, उस समय दृढ़तापूर्वक बंद कमरे में आंखें बंद करके बैठना कोई सच्ची साधना नहीं है। जो एक असहाय मनुष्य की उसके मरणासन्न अवस्था में सेवा करता है, वह बंद कमरे में बैठकर ध्यान करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक साधना करता है। यदि वह एक घंटा सेवा करता है तो वह छः घण्टे ध्यान करने के समान है। सेवा में किसी प्रकार की हानि नहीं है। एक दयालु डाक्टर, जो बिना फीस लिये ही एक असहाय निर्धन रोगी की अर्द्ध-रात्रि में सुश्रूषा करता है, वह उस ध्यान-योगी से सहस्रों गुणा अच्छा है जो एक निर्धन क्षुधार्त प्राणी को मृतप्राय अवस्था में देख कर मार्ग से चुपचाप चला जाता है और उससे सान्त्वना का एक शब्द भी नहीं बोलता और न उससे यही पूछता है कि 'भाई! तुम्हें क्या चाहिये? क्या मैं

कर्मयोगी को ध्यान और उपनिषद् अथवा अन्य ग्रन्थों के स्वाध्याय की चिंता नहीं करनी चाहिये। भगवान् की कृपा से उसे ज्ञान की पुस्तक से, अपने अन्तःकरण से ही सब ज्ञान प्राप्त होगा। परन्तु यदि वह प्रातःकाल कुछ समय जप, कीर्त्तन, ध्यान और धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय में भी लगाता है तो यह विशेष लाभदायी है। काम करते हुये भगन्नाम का मानसिक जप भी कर सकता है। रात्रि में एक बार पुनः वह जप-ध्यान आदि के लिये बैठ सकता है।

निष्काम्य सेवा में रत कर्मयोगी को कभी-कभी उद्वेग और निराशा का सामना करना पड़ेगा। परन्तु उसे वीरता पूर्वक आगे बढ़ते रहना चाहिये। उसे अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा में विश्वास रखना चाहिये। उसकी निष्कपटता के परिणामस्वरूप सारी कठिनाइयां उसकी सहायक बन जायेंगी; क्योंकि भगवान् स्वयं रहस्यमय ढंग से उसके कार्य में उसकी सहायता करेंगे और उसे सहारा देंगे। आत्मोत्सर्ग करने वाले सभी कर्मयोगियों का यह सदा का अनुभव रहा है। अतः साहस और भगवान् में विश्वास यह आपके संकेत शब्द हों।

कर्मयोग का अभ्यास भगवद्भक्ति के विकास और वेदांत की एकता के अनुभव करने का निश्चित साधन है। कर्मयोग का अभ्यास किये बिना सैकड़ों जन्मों में भी भक्ति अथवा ज्ञान के प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञान—ये प्रेम के अविकसित रूप हैं। सेवा प्रेम का प्रकट रूप है। प्रेम का सच्चा प्रकटन शब्दों से नहीं वरन् कर्म से होता है। कर्मयोगी सच्चा भक्ति-योगी और ज्ञानयोगी बन जाता है। कर्मयोग का पुष्प भक्ति और ज्ञान में विकसित होता है।

कर्मयोग सर्वश्रेष्ठ योग है। यह आपको भगवत्-साक्षात्कार के लिये शीघ्र ही समर्थ बनाता है। राजा जनक एक प्रबल कर्मयोगी थे। महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने कर्मयोग द्वारा ही अपने को महान बनाया।

स्कूल तथा कालेज के सभी विद्यार्थी ऐम्बुलेंस कोर में सम्मिलित हों! अपने को शुद्ध और उन्नत बनाने के लिये यहां आपके लिये विशाल क्षेत्र है। कर्मयोग की कला को सीखिये। कर्मफल की कभी आशा न रखिये। कर्त्तापन की भावना छोड़ दीजिये। प्रभु के हाथ के निमित्त बन कर

रहिये। अपने प्रत्येक कर्म को भगवान् की पूजा के रूप में अर्पित कर दीजिये। सभी चेहरों में भगवान् के दर्शन कीजिये। सदा 'श्रीराम' का मानसिक जप कीजिये। अनुभव कीजिये कि सारा संसार भगवान् का व्यक्त रूप है।

संस्थापक की जय हो! निष्काम कार्यकर्त्ताओं की जय हो! आप सब निष्काम सेवा, हरि-नाम के कीर्त्तन तथा कर्त्तव्यपरायणता, समदृष्टि, मानसिक सन्तुलन और आत्मभाव के विकास से शाश्वत, अन्तर्वासी अमर आत्मा में आनन्द उपभोग करें! ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

—:o:—

६. सेवा उन्नत बनाती है

परम भाग्यशाली आत्माओ!

आप लोगों के सम्मुख बोलने का यह अवसर प्राप्त कर मुझे आज अतीव आनन्द हो रहा है। मैं आप लोगों को संसार के भविष्य का संरक्षक मानता हूँ। आने वाली पीढ़ियों और जातियों की उन्नति और कल्याण आप पर ही निर्भर करता है। अतः आप सबों को सच्चरित्रवान

आदर्श-व्यक्ति के रूप में बढ़ते हुए देखने की मेरी हार्दिक कामना है। मैं आप सबों को इस संसार में सत्य और पवित्रता के दिव्य जीवन के सक्रिय व्याख्याता के रूप में देखना चाहता हूँ।

यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम्य सेवा बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधना से संभव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तत्काल ही आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिये निष्काम्य सेवा निश्चय ही बहुत ही आवश्यक है। जीवन की सफलता के प्राप्त्यर्थ आप लोग निश्चय ही ठीक दिशा में प्रयास कर रहे हैं।

इन सद्गुणों के अर्जन किये बिना ही साधक ध्यान करने बैठ जाते हैं। वे सच्चे ध्यानयोगी बनना चाहते हैं और एकांतवास का आश्रय लेते हैं। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में खेदजनक रूप से असफल रहते हैं; क्योंकि उन्होंने उन गुणों का

अर्जन नहीं किया है जिनसे हृदय कोमल और शुद्ध बनता है तथा मन एकाग्र और स्थिर होता है। वे आरम्भ में किसी प्रकार का उग्र ध्यान करते हैं; परन्तु छः महीने में ही वे तामसी बन जाते हैं। वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बन जाते हैं। अब वे न तो ध्यान कर सकते हैं और न कर्मयोग ही। वे इस लक्ष्य को तो खो बैठते हैं और उधर भी असफल रहते हैं। 'दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम'—वाली कहावत चरितार्थ होती है। वे शोक को प्राप्त होते हैं। उन्होंने यह जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर डाला। यह निश्चय ही बहुत शोचनीय है।

जो व्यक्ति संसार की सेवा करता है वह वास्तव में अपनी ही सेवा करता है। जो दूसरों की सहायता करता है, वह अपनी ही सहायता करता है। यह महत्वपूर्ण बात है। अतः जब आप किसी दूसरे मनुष्य की अथवा स्वदेश की सेवा करें तो यही भावना बनाए रक्खें कि भगवान् ने आपको सेवा के द्वारा उन्नति करने और अपने को सुधारने का अमूल्य अवसर प्रदान किया है। जो मनुष्य आपको सेवा करने का अवसर प्रदान करता है, उसके प्रति कृतज्ञ बनिये।

जब दूसरों की भलाई करना मनुष्य जीवन का अंग बन जाता है तब जरा सी भी स्वार्थ-भावना नहीं रहती। वह दूसरों की सेवा और भलाई करके बड़ा प्रसन्न होता है। उस निष्काम्य सेवा में एक अपूर्व आनन्द मिलता है। निष्काम्य सेवा करने से उसको आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

निष्काम कर्मयोगी सब को भगवान् का विराट् रूप समझता है। अतः उसकी दृष्टि में समस्त सेवायें सर्वव्यापी भगवान् की निरन्तर पूजा है। भगवान् की सर्वव्यापकता की भावना जाग्रत होने के कारण वह एक अनिर्वचनीय अनुपम सुख का अनुभव करता है। एक चक्र से दूसरे चक्र की ओर प्रगति करने पर हठयोगी को, भाव समाधि के प्राप्त होने पर भक्त को तथा निदिध्यासन के समय में वेदांती को जो आनन्द प्राप्त होता है वही आनन्द निष्काम कर्मयोगी को मिलता है।

राजयोगी जिन सिद्धियों को प्राप्त करता है, कर्मयोगी उनको प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि उसके लिये तो सर्वत्र आनन्दमय प्रभु ही विराजमान हैं। यहां न तो कोई प्रदर्शन करने

ाला है और न कोई उनकी प्रशंसा करने वाला
ो। मानवता अथवा भगवान् के विराट् रूप की
तत प्रेमपूर्ण सेवा के द्वारा जो दृष्टि प्राप्त होती है,
सी में वह आत्मविभोर रहता है। यह आनन्द
ग्श्रित है। यह सभी निष्काम कर्मयोगियों का
रस्कार है।

कर्मयोग सर्वश्रेष्ठ योग है। यह आपको भगवत्
ाक्षात्कार के लिये शीघ्र ही समर्थ बनाता है।
ाजा जनक एक प्रबल कर्मयोगी थे। महात्मा
ांधी आदि महापुरुषों ने कर्मयोग के द्वारा ही
पने को महान् बनाया।

हे अमृत सन्तान! सतर्क, चपल, सहानुभूति-
र्ण, आज्ञाकारी, नम्र और सहिष्णु बनो। अपने
बड़ों की आज्ञा का पालन करो। कटु वाणी
भी न बोलो। निष्काम सेवा तथा आत्मत्याग
ी भावना का अधिकतम विकास करो। कर्म पूजा
ी है। यह भाव रक्खो कि आप भगवान् की सेवा
र रहे हैं। इससे आपका हृदय शुद्ध बनेगा और
ाश्वत आनन्द अथवा भगवत-साक्षात्कार की
ाप्ति होगी।

संस्थापक की जय हो ! निष्काम कर्मयोगियों की जय हो ! आप सब निष्काम सेवा, हरिनाम के कीर्त्तन तथा कर्त्तव्यपरायणता, समदृष्टि, मानसिक सन्तुलन और आत्मभाव के विकास से शाश्वत अन्तर्वासी अमर आत्मा में आनन्द उपभोग करें !

—:o:—

७. कर्मयोग की महिमा

व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम सेवा सबसे बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधन से संभव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तत्काल ही आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिये निष्काम सेवा निश्चय ही बहुत आवश्यक है।

यह संसार प्रभु का ही एक रूप है; क्योंकि इसकी रचना, इसका पालन और संहार भगवान् से ही होते हैं। कानों की बालियां, बाजूबन्द ये सब स्वर्ण के अतिरिक्त और क्या हैं? इसी भांति यह

नाम-रूप-मय संसार भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सारे रूप भगवान् की ही विभूतियां हैं। यदि आप इसे निरन्तर स्मरण रक्खें तो आपको एक नया दृष्टिकोण मिल जायगा। आप राग-द्वेष से रहित हो जायेंगे। विराट् की पूजा के द्वारा आपको आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो जावेगा।

जब आप भगवान् को भुला देते हैं तभी आप भूलें करते हैं। जब आपको उनकी उपस्थिति का स्मरण नहीं रहता तभी आप कष्ट और शोक अनुभव करते हैं। यदि आप उनकी उपस्थिति का सतत अनुभव करने का प्रयास करें तो आपके सारे कष्ट और कठिनाइयां इस प्रकार दूर हो जायेंगी जैसे अरुणोदय काल में कुहेलिका नहीं ठहरती यदि प्रारम्भ में स्मरण की धारा टूट भी जाय तो चिन्ता नहीं। नियमित अभ्यास से यह धारा निरवच्छिन्न बन जायगी।

कोई भी व्यक्ति चौबीसों घण्टे ध्यान नहीं कर सकता है। अवकाश के समय मन को संलग्न बनाये रखने के लिये किसी न किसी प्रकार का काम आवश्यक है। उचित भाव से किया गया काम

भगवान् की पूजा ही है।

प्रत्येक व्यापारी अथवा व्यवसायी अपने व्यवसायिक जीवन में रहते हुये भी भगवत्साक्षात्कार कर सकता है। बहुत से चमार सन्त हुये जो मोची का काम करते हुये भगवत्साक्षात्कार प्राप्त किये। एक मांस-विक्रेता ने भी भगवत्साक्षात्कार प्राप्त किया। उसने एक योगी को भी आध्यात्मिक ज्ञान दिया।

योगी जिन सिद्धियों को प्राप्त करता है, कर्मयोगी उनको प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करता; क्योंकि उसके लिये तो सर्वत्र आनन्दमय प्रभु ही विराजमान हैं। यहां न तो कोई प्रदर्शन करने वाला है और न कोई उन प्रदर्शनों की प्रशंसा करने वाला ही। मानवता अथवा भगवान् के विराट् रूप की सतत प्रेमपूर्ण सेवा के द्वारा जो दृष्टि प्राप्त की है, उसी में वह आत्मविभोर रहता है। यह आनन्द निश्चित है। यह सभी निष्काम कर्मयोगियों का पुरस्कार है।

आप सभी कर्मयोग के अभ्यास द्वारा प्रखर योगी के रूप में विराजित हों। आप [illegible]

८. दिव्य सन्देश

भाग्यशाली अमर सन्तान !

आप भारत की तथा समस्त विश्व की भावी आशा हैं। सुनियमित जीवन यापन कीजिए। यही आध्यात्मिक शक्ति, जीवन में सफलता तथा शाश्वत आनन्द का आधार है। सदा साहसी और प्रसन्न रहिए। जप, ध्यान और प्रार्थना द्वारा अन्दर से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कीजिए। अपने माता-पिता तथा गुरु की श्रद्धा और भक्ति से सेवा कीजिए। श्रुति कहती है : 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।'

शास्त्र और भगवान् के नाम में श्रद्धा रखिए ! नित्य संध्योपासना कीजिए। भगवान् के नाम का गायन कीजिए। जीवन के लक्ष्य (भगवत्-साक्षात्कार) पर ध्यान करना चाहिए तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। अपने भौतिक अभ्युदय की कभी भी अवहेलना न कीजिए। समाज की सेवा कीजिए। निर्धन और रोगी की आत्मभाव से सेवा कीजिए। प्रत्येक परिस्थिति में सच बोलिए। मन, वाणी अथवा कर्म से किसी प्राणी को आघात न पहुँचाइए। अपने

आचार और व्यवहार में आदर्श बनिए।

आप सब अभ्युदय को प्राप्त करें!

आप सब इसी जीवन में भगवत्साक्षात्कार प्राप्त करें!

—:o:—

९. औपनिषदिक संस्कृति

आचार्य के निरीक्षण में शिक्षा समाप्त कर लेने पर पूर्वकाल में विद्यार्थियों को जो अन्तिम उपदेश दिया जाता था, वह यहां दिया जा रहा है। यह वर्तमान काल के दीक्षान्त भाषण के समान है जो कि विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त करने पर विद्यार्थियों को उनके पदक प्रदान करने के अवसर पर दिया जाता है।

वेदाध्ययन कराने के अनन्तर आचार्य शिष्य को उपदेश देता है—'सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। वेदों के स्वाध्याय से प्रमाद न करो। आचार्य के लिये अभीष्ट धन देकर (उनकी आज्ञा से स्त्री-परिग्रह करो और) सन्तान-परम्परा का छेदन न करो। सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिये। धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। कुशल (कल्याण-

कारी) कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। मांगलिक कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिये।

'देवकार्य और पितृकार्य से प्रमाद नहीं करना चाहिये। माता को देवता समझो (मातृदेवो भव)। पिता को देवता समझो (पितृदेवो भव)। आचार्य को देवता समझो (आचार्यदेवो भव)। अतिथि को देवता समझो (अतिथिदेवो भव)। जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिये, दूसरों का नहीं। हमारे जो शुभ आचरण हैं, तुम्हें उन्हीं की उपासना करनी चाहिये, दूसरे प्रकार के कर्मों की नहीं।

'जो कोई हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, आसनादि के द्वारा तुम्हें उनके श्रम को दूर करना चाहिये।

'श्रद्धापूर्वक देना चाहिये; प्रचुरता से देना चाहिये, नम्रता पूर्वक देना चाहिये। सहानुभूति पूर्वक देना चाहिये।

'यदि तुम्हें कर्म या आचार के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो तो वहां जो विचारशील, कर्म

पितृदेवो भव — जय जय राम
आचार्यदेवो भव — सीताराम
अतिथिदेवो भव — जय जय राम

माता को देवता समझो — जय जय राम
पिता को देवता समझो — सीताराम
आचार्य को देवता समझो — जय जय राम
अतिथि को देवता समझो — सीताराम

माता-पिता — जय जय राम
परम प्रभु के — सीताराम
साक्षात् रूप हैं — जय जय राम
उनकी पूजा करो — सीताराम

यह भौतिक शरीर — जय जय राम
माता-पिता ने दिया है — सीताराम
भगवत्-साक्षात्कार का — जय जय राम
और जीवन की सफलता का — सीताराम
यह उपकरण है — जय जय राम

तुम्हारे परिपालन को — जय जय राम
माँ ने अपना जीवन दिया है — सीताराम
सैकड़ों जन्मों में भी — जय जय राम
तुम उऋण नहीं हो सकते — सीताराम

अपने पिता दशरथ के — जय जय राम

ोचो, राम कितने भक्त थे सीताराम
नकी आज्ञा मान कर जय जय राम
न में निवास किया सीताराम

रत तुल्य बनो जय जय राम
ाताओं से प्रेम करो सीताराम
ग्रेष्ठ भ्राता जय जय राम
ता तुल्य है सीताराम

ाई से मत झगड़ो जय जय राम
ता से मत झगड़ो सीताराम
पत्ति विभाजन हेतु जय जय राम
ायालय मत जाओ सीताराम

दि अभियोग चलाते हो जय जय राम
म नीच, अभागे हो सीताराम
म महापापी हो जय जय राम
म दुर्जन हो सीताराम

ता बीमार हों तो जय जय राम
नके चरण दबाओ सीताराम
त्य उनके वस्त्र धोओ जय जय राम
ससे चित्त शुद्ध होगा सीताराम

(२)

सादे वस्त्र पहनो जय जय राम
सादा भोजन करो सीताराम
भद्र बनो, नम्र बनो जय जय राम
शान्त बनो, दयालु बनो सीताराम
भले बनो, भला करो जय जय राम

पोशाक और फैशन में जय जय राम
बाल कटवाने में सीताराम
तथा पतलून और हैट में जय जय राम
दूसरों की नकल मत करो सीताराम

धूम्रपान मत करो जय जय राम
मद्यपान मत करो सीताराम
सिनेमा देखने जय जय राम
कभी मत जाओ सीताराम

उपन्यास आदि जय जय राम
कभी मत पढ़ो सीताराम
आपकी कामुक वृत्ति को जय जय राम
यह उत्तेजित करेगा सीताराम

इसकी आदत डालो जय जय राम
चार बजे प्रातः उठो सीताराम

पहले कुछ प्रार्थना करो — जय जय राम
फिर कुछ स्वाध्याय करो — सीताराम

प्रातःकाल में — जय जय राम
जो तुम पढ़ोगे — सीताराम
उसका प्रभाव गम्भीर होगा — जय जय राम
अधिक धारणा होगी — सीताराम

गीता, रामायण — जय जय राम
अथवा भागवत — सीताराम
नित्यप्रति पढ़ो — जय जय राम
नियमित सन्ध्या करो — सीताराम

संस्कृत पढ़ो — जय जय राम
घर पर कीर्तन करो — सीताराम
जप भी करो — जय जय राम
सफल होगे — सीताराम

स्वास्थ्य का ध्यान रखो — जय जय राम
खुली वायु में दौड़ो — सीताराम
दूर तक टहलो — जय जय राम
दण्ड, बैठक करो — सीताराम

या योगासन करो — जय जय राम
टेनिस खेलो — सीताराम

हाकी, फुटबाल आदि जय जय राम
मैदानी खेल खेलो सीताराम

जब तुम खेल खेलो जय जय राम
किसी को धोखा मत दो सीताराम
सच्चे और न्यायी बनो जय जय राम
और सरल बनो सीताराम

(३)

सभी कार्यों में जय जय राम
विद्या अध्ययन में सीताराम
और सभी विषयों में जय जय राम
समयनिष्ठ बनो सीताराम

अनुकूलता का विकास करो जय जय राम
परिश्रमी बनो सीताराम
आलस्य और प्रमाद को जय जय राम
पराजित करो सीताराम

प्राथमिक चिकित्सा सीखो जय जय राम
मानवता की सेवा में सीताराम
चित्त-शुद्धि में जय जय राम
यह सहायक होगी सीताराम

रोगी, दुःखी और निर्धन की — जय जय राम
सेवा को तत्पर रहो — सीताराम
निष्काम सेवा की — जय जय राम
भावना विकसित करो — सीताराम

दीनों को ठुकराओ मत — जय जय राम
उनकी सेवा करो, उनसे प्रेम करो — सीताराम
इससे करुणा का विकास होगा — जय जय राम
और ईश-कृपा की प्राप्ति होगी — सीताराम

शिष्ट बनो, विनीत बनो — जय जय राम
उद्धत मत बनो — सीताराम
सौम्य बनो, सुशील बनो — जय जय राम
साहसी और प्रफुल्ल बनो — सीताराम

सभी परिस्थितियों में — जय जय राम
सदा सच बोलो — सीताराम
वीर्य की रक्षा करो — जय जय राम
ब्रह्मचर्य का पालन करो — सीताराम

वीर्य-संरक्षण से — जय जय राम
मनोबल विकसित होगा — सीताराम
स्मरणशक्ति की प्राप्ति होगी — जय जय राम
वीर्य महान् शक्ति है — सीताराम

ौतिक और आध्यात्मिक उन्नति जय जय राम
ससे होगी सीताराम
ालीस बूंद रुधिर का जय जय राम
क बूंद वीर्य है सीताराम

री आदतों ने जय जय राम
ुतों का विनाश किया है सीताराम
वित, दृष्टि और स्मृति जय जय राम
सकी नष्ट हो गई है सीताराम

च आदतों का त्याग करो जय जय राम
र्क बनो, सजग बनो सीताराम
त्र बनो, शुद्ध बनो जय जय राम
र सुस्वास्थ्य प्राप्त करो सीताराम

ंगति का त्याग करो जय जय राम
ंसन का त्याग करो सीताराम
वता का विकास करो जय जय राम
ंसा का अभ्यास करो सीताराम

न में कुछ सूत्र अपनाओ जय जय राम
र उन सूत्रों के अनुकूल सीताराम
अपना जीवन बिताओ जय जय राम
से चरित्र का विकास होगा सीताराम

ताश मत खेलो — जय जय राम
जूआ मत खेलो — सीताराम
तुम सब कुछ खो दोगे — जय जय राम
तुम्हारे कीर्त्ति और चरित्र का — सीताराम
यह विनाश करेगा — जय जय राम

सदाचार के बिना — जय जय राम
और सच्चरित्रता के अभाव में — सीताराम
तुम्हारा जीवन व्यर्थ है — जय जय राम
तुम मृतक समान हो — सीताराम

ईश्वर और शास्त्रों में — जय जय राम
श्रद्धा बढ़ाओ — सीताराम
सत्संग करो — जय जय राम
मन्दिर जाओ — सीताराम
पूजा करो — जय जय राम
भक्ति बढ़ाओ — सीताराम

साधु और संन्यासी की — जय जय राम
निन्दा मत करो — सीताराम
चुगली मत करो — जय जय राम
गाली मत दो — सीताराम

दूसरे धर्म और मत पर — जय जय राम

प्रहार मत करो सीताराम
सदा सहनशील बनो जय जय राम
सब धर्मों का मान करो सीताराम

पवित्र भूमि में जन्म लेना जय जय राम
सौभाग्य की बात है सीताराम
अपनी संस्कृति के प्रति सच्चे बनो जय जय राम
यह महान् और परमोत्कृष्ट संस्कृति है सीताराम

अपने मित्र या गुरु से जय जय राम
या किसी दूसरे से सीताराम
जब कभी मिलो जय जय राम
कहो, 'ओ३म् नमो नारायणाय' सीताराम

या कहो, 'जय राम जी की' जय जय राम
या कहो, 'जय श्रीकृष्ण की' सीताराम
या कहो, 'ओ३म् नमः शिवाय' जय जय राम
या कहो, 'हरि ओ३म्, हरि ओ३म्' सीताराम

'गुड मार्निङ्ग सर' कहने की जय जय राम
आदत छोड़ो सीताराम
यह नकल बुरी है जय जय राम
पूर्वोक्त अभिवादन सीताराम
सभी प्राणियों के अन्दर जय जय राम

प्रभु के दर्शन में	सीताराम
सहायक होगा	जय जय राम
और इससे प्रभु का	सीताराम
सतत स्मरण होगा	जय जय राम
यह साधना भी है	सीताराम
जब तक जीवन अनिश्चित हो	जय जय राम
और अपनी जीविकोपार्जन	सीताराम
जब तक न कर सको	जय जय राम
तब तक अविवाहित रहो	सीताराम
अपना पेशा चुनने में	जय जय राम
सावधान रहो	सीताराम
वकील अधिवक्ता	जय जय राम
कभी मत बनो	सीताराम
मिथ्या भाषण से	जय जय राम
आत्मा को मारोगे	सीताराम
आध्यात्मिक पथ में	जय जय राम
प्रगति न कर सकोगे	सीताराम
पुलीस आफिसर	जय जय राम
कभी मत बनो	सीताराम
आत्मिक उन्नति	जय जय राम
प्राप्त न कर सकोगे	सीताराम

प्राध्यापक बनो	जय जय राम
या डाक्टर बनो	सीताराम
यह उत्तम वृत्ति है	जय जय राम
स्वाध्याय हेतु	सीताराम
और योगाभ्यास हेतु	जय जय राम
अवकाश मिलेगा	सीताराम
जब तुम विवाह करो	जय जय राम
स्त्रीजित मत बनो	सीताराम
साध्वी माँ से	जय जय राम
दुर्व्यवहार मत करो	सीताराम
संयुक्त परिवार रखने का	जय जय राम
सदा प्रयास करो	सीताराम
अधिक धन-संचय में	जय जय राम
यह सहायक होगा	सीताराम
माता की आज्ञा पालन करना	जय जय राम
और बहिन भावियों के साथ	सीताराम
मिलकर रहना	जय जय राम
पत्नी को सिखलाओ	सीताराम
सभी नारियों में	जय जय राम
मातृभाव बढ़ाओ	सीताराम

अपनी ही माँ — जय जय राम
उनको समझो — सीताराम

स्त्री जाति में — जय जय राम
दुर्गा माँ के दर्शन करो — सीताराम
शुचिता के विकास में, — जय जय राम
कुविचार के दमन में — सीताराम
काम के नियन्त्रण में — जय जय राम
और शक्ति रूप में—— — सीताराम
भगवद्दर्शन में — जय जय राम
यह सहायक होगा — सीताराम

—.o:—

११- अर्जनीय गुण

(इसकी एक प्रतिलिपि तैयार कर लीजिये और उसे अपने कमरे में किसी प्रमुख स्थान पर लटका दीजिए।)

(१)

अनुशासन	दीर्घप्रयत्न
अविचल भक्ति	धैर्य
आज्ञाकारिता	नम्रता
आत्मसंयम और आत्मोत्सर्ग	निर्भयता
	निष्कपटता
ईश्वर की सत्ता का सर्वत्र भान	ब्रह्मचर्य
	भद्रता
ईश्वर में अविचल श्रद्धा	मन का सन्तुलन
उदारता	मनोबल
उद्योगशीलता	मानसिक स्थैर्य
क्षमा	राग और फल की कामना रहित हो कर्म करना
चित्तशुद्धि	
जिज्ञासा	विषयों के प्रति अनासक्ति
त्याग	
दानशीलता	शान्त और प्रसन्न मुद्रा

शान्ति
सत्यशीलता
सरलता
सहनशीलता
सहिष्णुता
साम्यावस्था
साहस
सेवाभाव
स्पष्टवादिता

(२)

अनुराग
अपनी भूल और कमजोरी को स्वीकार करना
अपमान और हानि सहन
अलोभ
अलोलुपता
अस्तेय
अहिंसा
आत्मनिग्रह
आत्मसंयम
ईर्ष्या और अहंकार का अभाव
कुसंग त्याग
कृपालुता
क्षमाशीलता
जनमत के प्रति उदासीनता
जीवदया
ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की दृढ़ता
तप
तृप्ति
तेजस्विता
दयालुता
दातापन
दीर्घसूत्रिता का अभाव
दूसरों की प्रशंसा
दृढ़ता
धार्मिकता
धैर्य

निद्रा को कम करना
नियमितता
निर्दोषिता
निर्भीकता
निश्चलता
निष्काम्य सेवा
पर अपवाद विमुखता
परोपकारिता
प्रशंसात्मिका बुद्धि
भाव के साथ रोगियों की सेवा
भूतदया
मन का समत्व
मन, वाणी और कर्म से किसी को हानि न पहुँचाना
महानुभावता
मित और मधुर भाषण
मुदिता
विचार
वीरता
वैराग्य
शिष्टता
शील
शुचिता
शौर्य
संयम
सच्चाई
सज्जनता
सत्यपालन
सद्भावना
सन्तोष
सभी विषयों में अनुशीलन
सहानुभूति
साधन पूर्णता
साहसिक कार्य
स्थैर्य
स्नेह
स्वाध्याय

१२. त्याज्य दुर्गुण

(इसकी एक प्रतिलिपि तैयार कर लीजिये और उसे अपने कमरे में किसी प्रमुख स्थान पर लटका दीजिए।)

(१)

अपवादिता
अहंकार
अहम्मन्यता
आलस्य
आलोचना
आसक्ति
ईर्ष्या
उदासी
काम
कामना
कुदृष्टि
कुविचार और दुर्व्यसन
कृपणता
क्रूरता
क्रोध
घृणा
दम्भ
दर्प
दुर्जनता
दुहरीचाल
दौर्मनस्य
निरीश्वरता
निर्दयता
नृशंसता
परुष वाणी
पिशुनता
पेटूपन
प्रतिहिंसा
प्रवंचना
मद
मात्सर्य
मिथ्याभाषण
मूढ़ता
लोकापवाद
लोलुपता
स्वार्थ
हठ

अंधविश्वास
अदूरदर्शिता
अनर्थक चिन्ता
अनाप-शनाप बोलना
अन्याय
अपमान
अपयश
अपशब्द
अवहेलना
अशिष्टता
अश्लीलता
आडम्बर
आत्मश्लाघा
आत्माभिमान
उत्पीड़न
उपन्यास पठन
कलहप्रियता
कला और शक्ति का प्रदर्शन
कूटनीति
क्षुद्रता
खिन्नता
चंचलता
चिड़चिड़ापन
छल

छिद्रान्वेषण
छोटों के प्रति दुर्व्यवहार
जीव-हिंसा
जूआ
झगड़ालूपन
दर्प
दिवा-निद्रा
दीर्घसूत्रिता
दुर्व्यवहार
दोषदृष्टि
द्वेष
धूम्रपान
धूर्तता
धृष्टता
निराशा
निरुद्योगिता
परनिन्दा
पाण्डित्य
प्रगल्भता
प्रतिवाद
प्रतिशोध
प्रमाद
भावुकता
भ्रमणशीलता
मदिरापान

मनोद्वेग
मानसिकअस्थैर्य
मिथ्याभिमान
रुक्षता
लघु चौर्य
लोभ
वितण्डावाद
विरोध
विवाद
व्यग्रता
शठता
शत्रुता
समय नष्ट करना
स्तब्धता
हवाई किले बनाना

—o::—

१३. साधना तत्त्व

अर्थात्

सप्त साधन विद्या

(मनुष्य के शीघ्र उन्नति तथा विकास के लिये शास्त्रोक्त साधनों का सार)...

भूमिका

(क) हजारों मन सिद्धांतों के ज्ञान से ए छटांक भर साधनों का आचरण अधिक लाभप्र है। इसलिये अपने दैनिक जीवन में योग, धम एवं दर्शन-शास्त्रों में बताए हुए साधनों का अभ्यार कीजिए, जिससे मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य--आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति हो।

(ख) इस साधन-पट में उपर्युक्त साधनों का तत्त्व एवं सनातन धर्म का विशुद्ध स्वरूप ३२ शिक्षाओं द्वारा दिया गया है। इनका अभ्यास वर्तमान काल के अत्यन्त कार्यव्यस्त लोगों के लिए भी सुशक्य है। इनके समय और परिमाण में आवश्यकतानुकूल परिवर्तन कर लीजिए और इनकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए।

(ग) आरम्भ में इनमें से थोड़ी ऐसी शिक्षाओं के पालन का संकल्प कीजिए, जिनसे आपके स्वभाव और चरित्र में थोड़ा निश्चित सुधार हो। यदि

किसी दिन बीमारी, सांसारिक कामों की अधिकता या किसी अनिवार्य कारण से आप निश्चित साधनों को न कर सकें तो उनके बदले सतत या यथा-सम्भव ईश्वर-नाम-स्मरण या जप कीजिए।

(१) आरोग्य साधना

१. मिताहार—आधा पेट खाइए। हलका और सादा भोजन कीजिए। भोजन करने से पूर्व उसे भगवान् को अर्पण कीजिए। सन्तुलित आहार लीजिए।

२. रजस्तमोवर्द्धक पदार्थों का त्याग—जहाँ तक सम्भव हो मिर्च, मसाले, इमली आदि राजसिक पदार्थों का सेवन कम कीजिए। चाय, काफी, धूम्र-पान, मांस-मछली तथा शराब का सर्वथा त्याग कीजिए।

३. व्रत-उपवास—एकादशी के दिन उपवास कीजिए, अथवा केवल दूध, कन्द और फल थोड़ा खाइए।

४. आसन-व्यायाम—योगासन या शारीरिक व्यायाम प्रतिदिन १५ से ३० मिनट तक कीजिए।

प्रतिदिन दूर तक टहलने जाइए या श्रमदायक कोई खेल खेलिए।

(२) प्राणशक्ति-साधना

५. मौनव्रत—प्रतिदिन दो घण्टा तथा रविवार को चार से आठ घण्टा तक मौन रहिए।

६. ब्रह्मचर्य व्रत—अपनी आयु तथा परिस्थिति के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कीजिये। शुरू के महीने में एक बार से अधिक ब्रह्मचर्य न भंग करने का संकल्प कीजिए। धीरे-धीरे घटा कर वर्ष में एक बार तक ले आइए। अन्त में जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा कीजिए।

(३) चरित्र-साधना

७. सत्य—सत्य, मधुर, हितकर और अल्प भाषण कीजिए।

८. अहिंसा—मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न पहुँचाइए। प्राणीमात्र पर दया-भाव रखिए।

९. आर्जव—सब लोगों से सरलता, निष्कपटता और खुले दिल से बरताव तथा बातचीत कीजिए।

१०. ईमानदारी–ईमानदार बनिए। अपने परिश्रम (पसीने) से कमाई कीजिए। अन्याय व अधर्म से मिलने वाला किसी का धन, वस्तु या उपकार मत स्वीकार कीजिए। सज्जनता और चरित्र का विकास कीजिए।

११. क्षमा–जब आपको क्रोध आ जाय, तब उसे धैर्य, शान्ति, दया, प्रेम और साहिष्णुता द्वारा दबा दीजिए। दूसरों के अपराध भूल जाइए और उन्हें क्षमा कर दीजिए। लोगों के स्वभाव और संयोगों के अनुसार बरताव कीजिए।

(४) इच्छाशक्ति-साधना

१२. मन-संयम–प्रतिवर्ष एक हफ्ता या एक महीने तक शक्कर या चीनी का और रविवार को नमक का त्याग कीजिए।

१३. कुसंग-त्याग–ताश, उपन्यास, सिनेमा और क्लबों का त्याग कीजिए। दुर्जनों की संगति से दूर भागिए। नास्तिक या जड़वादी से वाद-विवाद न कीजिए। ईश्वर में जिनकी श्रद्धा न हो या जो आपके साधनों की निन्दा करते हों, ऐसे लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दीजिए।

१४. सादा जीवन–अपनी आवश्यकताओं को कम कर दीजिए। सांसारिक सम्पत्ति को भी क्रमशः

घटाते जाइए। सादा जीवन और उच्च विचारों का अवलम्बन कीजिए।

(५) हृदय-साधना

१५. परोपकार—दूसरों की कुछ भलाई करना यही परम धर्म है। प्रति-सप्ताह कुछ घण्टे कोई निष्काम सेवा का कार्य कीजिए। इन कामों में अभिमान या बदले की आशा न रखिये अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को भी इसी भावना से कीजिए। स्वधर्म और कर्त्तव्य-कर्म का ईश्वरार्पण बुद्धि से पालन करना भी एक प्रकार की पूजा ही है।

१६. दान—अपनी आय का दशांश या कम से कम दो पैसा प्रति रुपया दान कीजिए। आपको कोई भी अच्छी वस्तु मिले, उसको दूसरों में बाँट कर उपभोग कीजिए। सारे संसार के प्राणियों को अपना कुटुम्बी मानिए। स्वार्थ-वृत्ति का त्याग कीजिए।

१७. नम्रता—विनम्र बनिए। सब प्राणियों को मानसिक नमस्कार कीजिए। सर्वत्र ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कीजिए। मिथ्याभिमान, दम्भ और गर्भ का त्याग कीजिए।

१८. श्रद्धा—गीता, गुरु और गोविन्द में अवि-चल श्रद्धा रखिए। सर्वदा ईश्वर को आत्मसमर्पण

करते हुए प्रार्थना कीजिए, 'हे प्रभो, जैसी तेरी इच्छा, वैसा ही हो। मैं कुछ भी नहीं चाहता।' सब परिस्थितियों या घटनाओं में ईश्वर-इच्छा को प्रधान समझ कर उसके अधीन हो जाइए।

१९. सर्वात्मभाव—सब प्राणियों में ईश्वर के दर्शन कीजिए और उनमें अपनी आत्मा के समान प्रेम भाव रखिए ; किसी से द्वेष न रखिए।

२०. नाम-स्मरण—सर्वदा ईश्वर का नाम स्मरण करते रहिए या कम से कम प्रातःकाल सोकर उठने पर, व्यावहारिक कामों के बीच अवकाश मिलने पर और रात में सोने से पूर्व ईश्वर का स्मरण कीजिए। अपनी जेब में एक जप माला रखिए।

(६) मानसिक-साधना

२१. गीता ध्यान—प्रतिदिन गीता का एक अध्याय या १० से १५ श्लोक तक अर्थ सहित अध्ययन कीजिए। मूल गीता को समझने के लिए यथेष्ट संस्कृत सीख लीजिए।

२२. गीता कण्ठस्थ करना—धीरे-धीरे सारी गीता को कण्ठस्थ कर लीजिए। गीता की एक पुस्तक सदा अपनी जेब में रखिए।

२३. स्वाध्याय—रामायण, भागवत, उपनिषद्, योगवाशिष्ठ या अन्य दर्शनशास्त्र या धर्मग्रन्थों का कुछ अंश प्रतिदिन अथवा छुट्टी के दिन अवश्य अध्ययन कीजिए।

२४. सत्संग—कथा, कीर्तन, सत्संग आदि में प्रत्येक अवसर पर जाकर उनसे लाभ उठाइए। रविवार या छुट्टी के दिन ऐसे सम्मेलनों का आयोजन कीजिए।

२५. मन्दिर गमन—किसी भी देवमन्दिर या पूजास्थान में प्रति-सप्ताह कम से कम एक दिन जाकर जप, कीर्तन, व्याख्यान आदि की व्यवस्था कीजिए।

२६. एकान्त सेवन—अवकाश या छुट्टी के दिनों में किसी पवित्र स्थान में जाकर एकान्त सेवन कीजिए और सारा समय साधना में बिताइए। सन्त-महात्माओं का सत्संग कीजिए।

(७) आध्यात्मिक साधना

२७. ब्रह्ममुहूर्त—रात में जल्दी सोकर प्रातःकाल चार बजे उठिए। शौच, दन्तधावन और स्नानादि से निवृत्त हो जाइए।

२८. जप, प्रार्थना और ध्यान—पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ कर पाँच से छः बजे तक

प्राणायाम, ध्यान, जप, स्तोत्र, प्रार्थना और कीर्तन करिये। एक ही आसन में सारा समय बैठने का धीरे-धीरे अभ्यास कीजिए।

२९. सन्ध्यापूजा—अपनी दैनिक सन्ध्या, गायत्री जप, नित्य-कर्म और पूजा करिए।

३०. मन्त्रलेखन—अपने इष्टमन्त्र या भगवान् के नाम को १० से ३० मिनट तक एक पुस्तिका में लिखिए।

३१. संकीर्तन—रात्रि में स्वजन, मित्र आदि के साथ बैठ कर आधा से एक घण्टा तक नाम-संकीर्तन, स्तोत्र, प्रार्थना, भजन आदि का गायन कीजिए।

३२. दैनन्दिनी—उपर्युक्त प्रकार की साधना करने का संकल्प कीजिए और प्रति-वर्ष नया संकल्प करके साधना को बढ़ाते जाइए। नियमितता, दृढ़ता एवं तत्परता से इनका पालन करना आवश्यक है। साधना का समय, परिमाण आदि आध्यात्मिक डायरी में लिखिए। प्रति-मास उसकी समालोचना कर अपनी त्रुटियों को सुधारते रहिये।

—:०:—

बीस आध्यात्मिक उपदेश

१. नित्यप्रति चार बजे प्रातः उठिये। य
ब्रह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिये बहु
अनुकूल है।

२. आसन : पद्म, सिद्ध अथवा सुखास
पर जप तथा ध्यान के लिये आध घण्टे के लि
पूर्व अथवा उत्तर की दिशा को मुख कर बैठ
जाइए। ध्यान के समय को शनैः शनैः तीन घण्टे
तक ले जाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए
शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। कोई हलका
शारीरिक व्यायाम जैसे टहलना आदि नियमित
रूप से कीजिए। बीस प्राणायाम कीजिए।

३. जप : किसी भी मन्त्र का जप कीजिए
जैसे–'ओ३म्,' 'ओ३म् नमो नारायणाय,' 'ओ३म्
नमः शिवाय,' 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय,'
'ओ३म् शरवणभवाय नमः,' 'सीताराम,' 'श्रीराम,'
'हरि ओ३म्' या गायत्री। अपनी रुचि या प्रकृति
के अनुसार किसी भी मन्त्र का १०८ से २१६००
बार प्रतिदिन जप कीजिए।

४. आहार संयम : शुद्ध सात्त्विक आहार कीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पक्ष के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन अधिक पसन्द करता है। सरल भोजन कीजिए। दूध तथा फल धारणा में सहायता पहुँचाते हैं। भोजन को जीवन निर्वाह के लिए औषधि के समान ही लीजिए। भोग के लिए भोजन करना तो पाप है। एक मास के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की आपमें क्षमता होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. ध्यान-गृह : अलग ध्यान-गृह रखिए तथा उसे ताले-कुंजी से बन्द रखिए।

६. दान : प्रतिमास अथवा प्रतिदिन यथा-शक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में छः पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. स्वाध्याय : गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवाशिष्ठ आदि का आध घण्टे से एक

रखिए।

८. ब्रह्मचर्य : बहुत ही सावधानी पूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिये। वीर्य ही ईश्वर की अभिव्यक्ति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. प्रार्थना के कुछ श्लोकों को याद कर लीजिये। जप अथवा ध्यान प्रारम्भ करने से पहले उनका पाठ करना शुरू कीजिये। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायगा।

१०. सत्संग कीजिये। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिये। किसी भी बुरी आदत में न फँसिये।

११. एकादशी को उपवास कीजिये या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिये।

१२. अपने गले में अथवा पाकेट में तथा रात्रि में तकिये के नीचे जपमाला रखिये।

१३. नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिये मौनव्रत कीजिये।

१४. हर हाल में सत्य बोलिये। थोड़ा बोलिये। मधुर भाषण कीजिये।

१५. अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिये। यदि आपके पास चार कमीज हैं तो इनकी संख्या

तीन या दो कर दीजिये। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइये। अनावश्यक चिन्ता त्यागिये। सरल जीवन तथा उच्च विचार रखिये।

१६. कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइये। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से दमन कीजिये।

१७. सेवकों पर निर्भर न रहिये। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. सोने से पहले दिन भर की अपनी गल-तियों पर विचार कीजिये। आत्मविश्लेषण कीजिये। बेंजामिन फ्रेंकलिन के समान नित्यप्रति आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिये। भूत-काल की गलतियों का चिन्तन न कीजिये।

१९. याद रखिये कि मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने में विफल न बनिये। सदाचार रखिये।

२०. प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिंतन कीजिये। ईश्वर पर पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यही सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सारांश है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिये। अपने मन को ढीला न छोड़िये।

डिवाइन लाइफ सोसाइटी

(उद्देश्य और प्रवृत्ति)

डिवाइन लाइफ सोसाइटी की स्थापना श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने सन् १९३९ के जनवरी मास में की थी। इसका मुख्य केन्द्र उत्तर प्रदेश के ऋषिकेश नगर के पार्श्व में है। अपने जीवन के प्रारम्भ से ही यह संघ सभी धर्म, सदाचार और दर्शन के सार्वभौमिक मूल सिद्धान्तों से मानव जाति को अवगत कराने तथा अपने दैनिक जीवन में उन्हें व्यवहार में लाने पर विशेष बल देने का सतत प्रयास करता आ रहा है।

योग और वेदान्त की शिक्षाओं का प्रचार ही इस संघ का मुख्य उद्देश्य है अतः यह राष्ट्र के भावी नागरिकों के, उसके नवयुवकों के सम्मुख एक आकांक्षनीय आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके अनुरूप वे अपना जीवन ढाल सकें।

यहाँ पर जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय के भेद को मान्यता नहीं दी जाती है। कोई भी व्यक्ति जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार सत्य, पवित्र और सार्वलौकिक प्रेममय दिव्य जीवन यापन करना

चाहता है, इसका सदस्य बन सकता है। देश तथा विदेश में इसकी ढाई सौ से अधिक शाखायें स्थापित हो चुकी हैं।

केन्द्र-स्थित योग वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी अध्यक्ष के सुचारु निरीक्षण में साधकों को योग-साधना की सभी प्रमुख शाखाओं में प्रशिक्षित करती है।

शिवानन्द पब्लीकेशन लीग योग, वेदान्त, दर्शन, चिकित्सा तथा अध्यात्म विषय की शैक्षणिक तथा प्रेरक पुस्तकें प्रकाशित करता है।

आर्ट स्टूडियो योगासन तथा डिवाइन लाइफ सोसाइटी की प्रवृत्तियों की फिल्म तथा योग और वेदान्त के प्रशिक्षण के टेप रेकार्ड तैयार करता है।

एकैडेमी की चार मासिक पत्रिकायें अंग्रेजी में और एक मासिक पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित होती हैं।

निःशुल्क साहित्य वितरण विभाग, सार्वजनिक भोजनालय तथा धर्म-निरपेक्ष पूजा के लिये मन्दिर की व्यवस्था है।

हाई स्कूल स्तर तक के निर्धन विद्यार्थियों को निःशुल्क भोजन और आवास प्रदान किया जाता है।

पत्र-व्यवहार विभाग संसार के बहुसंख्यक साधकों को आध्यात्मिक और औषधीय परामर्श देता है।

धर्मार्थ औषधालय स्थानीय तथा पास पड़ोस की ग्रामीण जनता की चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समय-समय पर 'नेत्र उपचार शिविर' तथा 'महिला चिकित्सा केन्द्र' की आयोजना की जाती है। आयुर्वेदिक फार्मेसी स्वदेशी औषधि के व्यवहार का प्रचार करती है।

समय-समय पर आध्यात्मिक सम्मेलन किए जाते हैं।

वर्ष में दो बार साधना-सप्ताह की आयोजना की जाती है। उस समय निकट और दूर के अनेकों साधक आध्यात्मिक साधना के अल्पकालीन परन्तु समन्वयात्मक प्रशिक्षण के लिए केन्द्र में एकत्रित होते हैं।

विश्व-धर्म-संघ और साधु-संघ विभिन्न मतावलम्बियों में सद्भावना और एकता का बीजारोपण करते हैं।

छात्र, आध्यात्मिक साहित्य
और
शिवानन्द जी

छात्र, आध्यात्मिक साहित्य और शिवानन्द जी

१. आध्यात्मिक ग्रन्थ और उनके लाभ

प्रश्न : स्वामी जी ! आध्यात्मिक साहित्य का क्या तात्पर्य है ? इस साहित्य के परिशीलन से भला छात्रों को क्या लाभ प्राप्त हो सकते हैं ?

उत्तर : आध्यात्मिक साहित्य का तात्पर्य केवल रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ से ही नहीं है, वरन् सन्त-महात्माओं तथा प्रज्ञाप्राप्त महापुरुषों द्वारा रचित वे पुस्तकें भी हैं जो पाठकों को समुन्नत बनातीं, श्रेयस्कर जीवन यापन में उनकी सहायता करतीं तथा उन्हें ईश की सन्निधि प्राप्त कराती हैं। उनके स्वाध्याय से छात्रों को अत्यन्त आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होता है। इस साहित्य के उन्नत विचार उनमें प्रेरणा भरते तथा उनके युवा मस्तिष्क पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं जिससे उनकी संपूर्ण आचार-विचार शैली का गठन सर्वथा दिव्य तथा उच्च आदर्शों पर होता है। उनमें सम्यक् विचार

और सम्यक् कार्य करने की क्षमता का विकास होता है।

दूसरे, अध्ययन से आपका मन सदा व्यस्त रहता है; जिससे आपको आलस्य नहीं घेरता है। क्या आपने यह लोकोक्ति नहीं सुनी है : 'खाली मन शैतान का घर होता है।' यदि आप प्रमादी बन जायेंगे अथवा आप उपन्यास और प्रहसन के अश्लील साहित्य पढ़ेंगे तो आपके मन में पतनकारी विचार घर कर लेंगे और वे दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही रहेंगे। समय पाकर बुरे विचार आपके जीवन को विपथ-गामी बना देंगे और आप विपत्ति में पड़ जायेंगे। इस हेतु से आपको सदैव समुन्नतकारी सत्साहित्य पढ़ना चाहिए।

तीसरे, अनवरत अध्ययन आपकी मानसिक शक्ति को सूक्ष्म विचारों के ग्रहण करने की क्षमता को विकसित करेगा। इससे आप में उच्चतर श्रेणी की एकाग्रता का विकास होगा। आपके भावी जीवन के प्रत्येक अध्यवसाय में यह एकाग्रता सहायक होगी।

चतुर्थ, आपको ध्यान रहे कि पुस्तकें ज्ञान की खान हैं और ज्ञान ही ऐश्वर्य है। उदाहरण स्वरूप 'प्राथमिक चिकित्सा,' 'घरेलू दवाइयां,' जैसी पुस्तकें पढ़ने से आप स्वयं तो लाभकारी ज्ञान से सम्पन्न

बनेंगे ही साथ ही विपत्ति में पड़े हुए निर्धन व्यक्तियों की सेवा भी कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त उच्च विचारों, उच्च भावों तथा महापुरुषों की प्रेरणादायी जीवनगाथाओं के सजीवन उपदेशों से समन्वित पुस्तकें विचारों के लिए आहार का काम करती हैं। हर प्रकार के व्यक्तियों को— वृद्ध और युवा सभी को—समान रूप से नैतिक तथा आध्यात्मिक पोषण प्रदान करती हैं। विचार और भाव ही मनुष्य के चरित्र का निर्माण करते हैं। आप सब इस महान् सत्य से अवगत हैं कि 'मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है।' इस भाँति शिष्ट जनों और भागवत पुरुषों के रचे हुये सद्ग्रन्थों के पारायण से मन विशुद्ध और उत्कृष्ट भावों से आपूरित हो जाता है। ये ग्रन्थ एक विशाल चरित्र और दिव्य स्वभाव वाले अभिजात पुरुष के रूप में अपने आपको ढालने में आपकी सहायता करते हैं।

इस भाँति ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन यशस्वी एवं महान् जीवन की आधार-शिला बन जाता है।

—:•:—

२. धार्मिक ग्रन्थकार

प्रश्न : आध्यात्मिक विषयों पर लिखने का अधिकार किसे है ?

उत्तर : आध्यात्मिक विषयों पर लिखने के सभी अधिकारी नहीं हैं ; क्योंकि इस बात का भय रहता है कि यदि वे कुछ गलत लिख गए तो पाठक उनके भूल भरे परामर्श को मानकर चलने से कहीं पथ-भ्रष्ट न हो जाय । आपको सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जन-साधारण में तो छपे हुए शब्द आप्तवाणी की तरह सत्य माने जाते हैं । आत्मदर्शी सन्त ही, जिनके पृष्ठभाग में दैवी शक्ति का बल रहता है, आध्यात्मिक साहित्य सृजन करने के अधिकारी हैं । उन उन्नत साधकों को भी, जिनका कथन उनके निजी जीवन में व्यवहृत होता है, आध्यात्मिक विषय पर लेखनी चलाने का अधिकार है ।

इस प्रकार के साहित्य के अतिरिक्त शास्त्रीय ग्रन्थों के रूप में दिव्य ज्ञान का चिर भण्डार भरा पड़ा है जो कि सम्पूर्ण मानव जाति की सम्पत्ति है। उपनिषद्, गीता, इंजील, कुरान, गाथा, रामायण आदि ऐसे ही उच्च कोटि के साहित्य हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति नित्य नूतन प्रेरणा, नवीन शक्ति, आलोक और पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है ।

सद्गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज के समान आत्मसाक्षात्कार प्राप्त तथा व्यावहारिक ज्ञान से सम्पन्न सन्तजन का आध्यात्मिक साहित्य के सृजन-कार्य में विशेष अधिकार है।

—:o:—

३. दैनिक स्वाध्याय की रूपांतरकारी शक्ति

प्रश्न . आध्यात्मिक ग्रन्थ किस प्रकार व्यक्ति के जीवन को परिवर्तित कर देते हैं ?

उत्तर : आध्यात्मिक ग्रन्थ मनुष्य को सत्य ज्ञान का उपदेश देकर तथा मानव जीवन के लक्ष्य के प्रति उसके नेत्र को उन्मीलित कर उसके जीवन को परिवर्तित कर देते हैं। मेरे इस कथन का भाव क्या है, इसे मैं और विस्तृत रूप में समझाता हूँ।

आजकल लोग एम० ए० पास कर लेते हैं, फिर भी उन्हें जीवन के वास्तविक लक्ष्य का पता नहीं रहता है। वे तुच्छ नौकरी के लिए तथा जीविका का साधन बनाने के लिए ही विश्वविद्यालय की उपाधियां प्राप्त करते हैं। अब वे विवाह करते हैं और सन्तति-प्रजनन में लग जाते हैं। कुछ लोगों को इतने पर भी सन्तोष नहीं होता है।

वे अपनी प्रथम विवाहिता पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद कर पुनः नये प्रणय-बन्धन में बँधते हैं। मूढ़ व्यक्ति व्यर्थ ही कामिनी और कञ्चन में सुख की खोज करता है। वह यह नहीं जानता कि कामिनी और कञ्चन दोनों ही नाशवान् हैं। अध्यात्म शास्त्र ऐसे व्यक्तियों को यह बतलाते हैं कि चिरन्तन सुख इन विनाशशील पदार्थों में नहीं वरन् एकमात्र भगवान् में ही प्राप्त होता है। वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि वास्तविक जीवन खाने-पीने और सोने में ही नहीं है। पशु भी तो यह कार्य कर लेते हैं। मानव जीवन का उद्देश्य इससे कहीं ऊँचा है। मनुष्य जीवन की यही विशेषता है कि वह भगवत्-साक्षात्कार के द्वारा पूर्णता की खोज कर सकता है और उसे प्राप्त भी कर सकता है। अध्यात्म शास्त्र जीवन का उद्देश्य बतला कर, उचित-अनुचित का ज्ञान देकर, महान् आध्यात्मिक धीर पुरुषों के ढांचे में अपने जीवन को ढालने के अनेक व्यावहारिक परामर्श देकर दुर्गुणों के निवारण और सद्गुणों के विकास में तथा भव्य व्यक्तित्व के निर्माण में आपकी सहायता करते हैं।

वे बतलाते हैं कि आपके जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है और उस उद्देश्य के हेतु अपना जीवन व्यतीत करते हुए किस प्रकार आप अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। वे आपकी दृष्टि के समक्ष उच्चादर्श के प्रेरणादायी चित्र निरन्तर बनाए रखकर आपके जीवन को सुसम्पन्न बनाते

और क्षुद्र एवं निम्न वस्तुओं के प्रलोभन-जाल में पड़ने से आपकी रक्षा करते हैं। इन आध्यात्मिक ग्रन्थों की वाणी में एक उच्चतर आधार से प्राप्त अधिकार और बल होता है जो श्रद्धालु पाठकों में आंतर बल का संचार करता है और उनमें सौम्यता तथा श्रेयस्कर जीवन यापन की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न करता है। यद्यपि ये ग्रन्थ मौन हैं फिर भी इनमें जीवन के रूपांतरण की सक्रिय शक्ति है। संसार के सारे इतिहास तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन आध्यात्मिक ग्रन्थों ने मानव जाति के महान् नेताओं के चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण भाग अदा किये हैं। शिवा जी, अब्राहम लिंकन तथा गाँधी जी इसके कुछ स्थायी उदाहरण हैं। मनुष्य जीवन पर इन आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रभाव मानव जाति की प्रगति में एक ऐसा सुनिश्चित कारक है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

—:o:—

४. विद्यार्थियों का नव-निर्मायक

प्रश्न : शिवानन्द साहित्य विद्यार्थियों के विचार-परिष्कार में कहाँ तक सहायक हो सकता है?

उत्तर : आध्यात्मिक साहित्य विद्यार्थी मात्र का ही नहीं वरन् प्रत्येक व्यक्ति का सहायक एवं

प्रेरक होता है। शरीर की भाँति मस्तिष्क को भी आहार की आवश्यकता होती है। यदि पशु को पशुशाला में ही सुन्दर चारा खिलाया जाय तो वह गन्दी वस्तु चुगने के लिए बाहर नहीं जायगा। इसी प्रकार यदि मन को उच्च विचार-रूपी खाद्य-पदार्थ, जो कि आध्यात्मिक साहित्य में प्रचुरता से उपलब्ध है, प्राप्त हो जाय तो उसकी रुचि गंदे और तुच्छ साहित्य में न रहेगी।

फिर भी आप इस बात को ध्यान में रखें कि यद्यपि आध्यात्मिक साहित्य सदा ही सहायक हुआ करता है; किन्तु एक व्यक्ति उससे कितना लाभान्वित होता है, यह उस व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर है। आपको भी उसी सीमा तक लाभ प्राप्त होगा जहाँ तक कि आपके नैतिक चरित्र का स्तर होगा, आध्यात्मिक विषय में आपकी जितनी रुचि होगी और ग्रंथ तथा उसके लेखक के प्रति आपकी जितनी श्रद्धा होगी। जो बात समस्त आध्यात्मिक साहित्य के लिए सामान्य रूप से सत्य है वह शिवानन्द साहित्य पर भी चरितार्थ होती है। इसके साथ ही शिवानन्द साहित्य में पापियों तथा नास्तिकों को भी परिवर्तित करने की अपनी विशेषता है और इसका प्रमुख कारण है लेखक की दिव्य शक्ति। स्वामी जी का अभ्याह्वान बहुत ही प्रभावशाली है। उनकी लेखन-शैली बहुत ही सरल है। वे पाठक को सीधे सम्बोधित करते हैं और इस भाँति अपने दिव्य उद्बोधक सन्देशों

द्वारा उसके हृदय को स्पर्श कर लेते हैं। वे मलिनता एवं दूषणों पर विजय प्राप्त करने तथा दिव्य बनने के व्यावहारिक उपाय एवं साधन बतलाते हैं। वे आपमें धैर्य, आशा एवं प्रेरणा का संचार करते हैं। वे छात्रों में उनके विकास-स्तर के अनुरूप बात करते हैं और उनके एक परम मित्र और हितैषी के रूप में उन्हें सत्परामर्श देते हैं। वे उन्हें प्रोत्साहित करने तथा उनमें नई आशा एवं श्रेष्ठतावाद का संचार करने के लिए सदा सीधा मार्ग अपनाते हैं। दोषारोपण तो वे कदाचित् ही करते हैं। इसलिये उनकी पुस्तकें नवयुवकों के लिए रोचक तथा उनके विचार और चरित्र के परिष्कार के लिए प्रभावशाली होती हैं।

—:०:—

५. मानव मात्र की सच्ची सम्पत्ति

प्रश्न : क्या यह सत्य है कि स्वामी शिवानन्द जी के साहित्य ने विश्व के आध्यात्मिक साहित्य को समृद्ध बनाया है?

उत्तर : निश्चय ही। गुरुदेव के ग्रंथ संसार के आध्यात्मिक साहित्य-माला में नव-ग्रथित माणिक के समान हैं। भगवत्-साक्षात्कार प्राप्त आत्मा होने के कारण स्वामी जी की लेखनी से जो कुछ लिखा जाता है वह उच्चतम कोटि के आध्यात्मिक साहित्य का रूप ले लेता है। शिवानन्द साहित्य ईश्वर-

प्रदत्त वरदान की भाँति ऐसे समय प्राप्त हुआ है जब विश्व का मूल्यांकन एक घोर संकट से गुजर रहा है। आप तो इस बात को स्वीकार करेंगे ही कि गुरुदेव का 'सेवा, प्रेम, दान, शुचिता, ध्यान तथा साक्षात्कार' का संदेश जिसका उनके विविध ग्रंथों में बहुत ही सुन्दर एवं विशद विवेचन किया गया है, विश्व के धर्मों के आध्यात्मिक मूल्य में एक बहुत ही महत्वपूर्ण योग-दान है।

स्वामी शिवानन्द जी ने दर्शन के अति गहन एवं सूक्ष्म तत्त्वों को बहुत ही सरल तथा स्पष्ट शैली में प्रस्तुत किया, धार्मिक उपदेशों के यथार्थ आध्यात्मिक भाव को इस रूप में प्रतिपादन किया है जो आधुनिक काल के लोगों के लिए उपयुक्त एवं ग्राह्य हो, अनावश्यक विषयों के विशाल समूह से आध्यात्मिकता के मौलिक सारभूत तत्त्वों को प्रकट किया और इस भाँति उन्होंने विश्व के आध्यात्मिक साहित्य को अपने एक विशेष ढंग से समृद्ध बनाया है। उन्होंने व्यावहारिक धर्म का, सक्रिय धर्म का और सभी धर्मों और शास्त्रों में निहित दिव्य जीवन की सार्वभौमिता का दिव्य संदेश दिया है।

कुछ लोग कह सकते हैं कि संसार में पहले से बहुत से धर्म और आध्यात्मिक ग्रंथ भरे पड़े हैं, फिर वर्तमान साहित्य को अधिक समृद्ध बनाने

का प्रश्न ही कहाँ आता है ? लेकिन सत्य तो यह है कि स्वामी जी का उत्कृष्ट आध्यात्मिक साहित्य साक्षात् ईश्वर का प्रसाद है जो आधुनिक युग के मानव की एक अन्यतम आवश्यकता को पूर्ण करता है। मानव जाति को गुरुदेव की रचनाओं के सदृश्य साहित्य की आज जितनी अपरिहार्य मांग है उतनी अतीत काल में कदाचित् ही कभी रही हो। प्राय: सभी धर्मों के मूल ग्रंथ प्राचीन शैली में लिखे गए हैं; इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों में उनकी भाषा अस्पष्ट एवं रूपकमयी हो गई है, जिससे उनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। अतः वे मानव जाति के अधिकांश वर्ग के लिए अधिक उपयोगी नहीं रहे हैं। इसके अतिरिक्त नैतिक एवं आध्यात्मिक विषयों के प्रतिपादन की परिपाटी भी कुछ ऐसी थी कि मुख्य विषय अनावश्यक विषयों से, और कभी-कभी असंगत व्याख्याओं से आवृत हो गया है जिससे सामान्य पाठक की बुद्धि का वहाँ तक प्रवेश नहीं हो पाता है। इस अनावश्यक सामग्री ने शास्त्रों का कलेवर इतना बढ़ा दिया है कि उनके विशाल-काय को देखकर ही पाठक भयभीत हो जाते हैं। आज का मानव इतना व्यस्त है कि वह अपने भोजन, नित्य की स्वच्छता एवं विश्राम आदि के लिए भी कठिनता से ही समय निकाल पाता है। ऐसी स्थिति में स्वामी शिवानन्द जी ने विशाल आध्यात्मिक साहित्य-सागर का मन्थन कर उनके सार तत्त्व को अपने विशिष्ट ढंग से आधुनिक

भाषा तथा सरल, स्पष्ट एवं ओजपूर्ण शब्दों में आधुनिक मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत कर विश्व के अध्यात्म साहित्य को समृद्धवान् बनाया है। इसके अतिरिक्त उनके साहित्य में धर्म के प्रायोगिक स्वरूप एवं अध्यात्म विज्ञान पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उनके ग्रन्थ केवल इतना ही नहीं बतलाते कि आपका ज्ञेय क्या है अथवा आपका धार्मिक विश्वास क्या होना चाहिए, वरन् वे शक्तिशाली ढंग से यह भी बतलाते हैं कि आपका व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए, आपका कर्तव्य कर्म क्या है और आपकी जीवनचर्या कैसी होनी चाहिए। उनके ग्रन्थ व्यावहारिक अध्यात्म और जीवन्त धर्म का संदेश देते हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही स्वामी जी का साहित्य विश्व के अध्यात्म साहित्य की बहुमूल्य निधि बन गया है।

—:o:—

६. किस पुस्तक से प्रारम्भ करें ?

प्रश्न : स्वामी जी, मुझे किस पुस्तक से अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिये ?

उत्तर : अपने स्वाध्याय के लिये सदा उन पुस्तकों को चुनिये जो आप में सौम्य भावनाओं का विकास करें, जो आपके मन में नवीन अभ्युदयकारी विचार लायें। पुस्तकों के अध्ययन से आप भद्र बनेंगे। यह आपको सदा जीवन के

उच्चतर क्षेत्रों की ओर उन्नयन करेगा। उन पुस्तकों को पढ़िये जिनसे आपके सच्चे, उपयोगी ज्ञान-कोष की वृद्धि हो। रामायण और महाभारत का अध्ययन कीजिये। इनमें शिक्षाप्रद प्ररणदायी कथायें भरी पड़ी हैं। यदि आपको मूल ग्रंथ के अध्ययन का समय न मिलता हो तो इनके संक्षिप्त संस्करण पढ़िये। गुरु महाराज की कुछ पुस्तकें पढ़िये। वे धर्म का सार बहुत ही सरल भाषा में बतलाती हैं। आपको तो पता ही है कि उन्होंने नवयुवक बालक और बालिकाओं के लिये विशेष रूप से कई पुस्तकें लिखी हैं। नैतिक शिक्षण Ethical Teachings, जीवन में सफलता के रहस्य Sure Ways for Success, ब्रह्मचर्य साधना Practice of Brahmacharya, विद्यार्थी जीवन में सफलता, Students' Success in Life दिव्य कथायें Divine Stories, बच्चों के लिये दिव्य जीवन Divine Life for Children, नवयुवकों की गीता Gita for the Young बच्चों के लिये गीता का सार Gita Essence for Children इत्यादि उनकी पुस्तकें पढ़िये। मनोनिग्रह तथा सद्गुणों के विकास के विषय पर उनकी पुस्तकें पढ़िये। [illegible]

७. स्वाध्याय का रहस्य

प्रश्न : स्वामी जी ! रामायण, गीता आदि ग्रंथों के नित्यप्रति बारम्बार पारायण से क्या लाभ प्राप्त हो सकता है ?

उत्तर : मैं आपको बतलाता हूँ कि आध्यात्मिक साहित्य का निरंतर स्वाध्याय क्यों आवश्यक है। एक उदाहरण द्वारा आप इसे भली भाँति समझ सकेंगे। यदि एक कील लेकर आप इस पर एक बार हथौड़े से चोट करें तो सम्पूर्ण कील एक चोट में ही नहीं धँस जायगी। इसको भली भाँति अंदर प्रवेश कराने के लिये आपको लगातार कई बार चोट करनी पड़ेगी। इसी भाँति अपने शरीर अथवा पौधे के सम्वर्द्धन के लिये केवल एक बार भोजन खाकर अथवा पौधे का सिंचन कर आप चुप नहीं बैठे रहते। आपको प्रतिदिन ही खाना पड़ता है तथा पौधे को नित्यप्रति जल भी देना पड़ता है। ऐसा करने में आप कभी चूकते नहीं हैं। यही बात आध्यात्मिक साहित्य के विषय में भी लागू होती है।

नित्य के स्वाध्याय से ही हमारे मस्तिष्क में वे विचार गहराई से प्रवेश कर जाते हैं। शनैः शनैः मन पवित्र हो जाता है। गीता आदि धार्मिक ग्रंथों का पारायण आपके मन में श्रेयस्कर स्पंदनों और विचार-तरंगों का सृजन करता है और

आपके जीवन का सुंदर नव-निर्माण होता है। अर्जुन, भीष्म तथा हनुमान के सद्गुणों का अनवरत चिंतन करने से आप भी शनैः शनैः उनके समान ही वीर बन जायेंगे। अपने मित्रों से मिलने पर जब आप परस्पर अभिवादन करते हैं, भले ही अभिवादन के उन शब्दों का कोई विशेष अर्थ न हो फिर भी वहाँ के वातावरण में एक उल्लास-सा छा जाता है। इसी प्रकार इन ग्रंथों का अर्थ समझे बिना भी यदि उनका स्वाध्याय किया जाय तो उस स्थान का वातावरण पवित्र हो जाता है। यों तो शास्त्रों का पाठ सदा ही अच्छा है किंतु अर्थ समझकर यदि उनका पाठ किया जाय तो यह लाभ कई गुना अधिक बढ़ जाता है।

जिस प्रकार आप प्राण-धारण के लिये नियमित रूप से सतत एवं अविच्छिन्न गति से स्वच्छ वायु में श्वास लेते हैं और अपने स्थूल देह को पोषण प्रदान करने के लिये दिन-प्रतिदिन, मास-प्रतिमास और वर्ष-प्रतिवर्ष भोजन करते हैं; आपको जानना चाहिये कि इसी भाँति नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिये उनके पोषक आहार की आवश्यकता होती है। भक्ति एवं आध्यात्मिकता के अभ्यास हमारी आत्मा के अपरिहार्य पोषक तत्त्व हैं। ये अभ्यास आंतर जीवन के लिये एक अत्यावश्यक आध्यात्मिक अवलंब हैं। मनुष्य का स्थूल देह तथा उसकी पाशविक प्रवृत्तियां ही उसका स्वरूप नहीं हैं। वह नैतिक प्राणी है और

दिव्य चैतन्य ही उसका स्वरूप है। उसके इन उच्चतर अंगों के पोषण, विकास, शक्ति-सम्पन्नता तथा पूर्ण प्रस्फुटन के लिये आंतर आध्यात्मिक जीवन की नितांत आवश्यकता है। स्वाध्याय आंतर आध्यात्मिक जीवन का एक आवश्यक एवं अपरिहार्य अंग है। स्वाध्याय से नित्य ही सौम्य, पवित्र, उन्नायक और प्रेरक विचारों का अंतर्ग्रहण होता है। ये विचार मन को प्रलोभन-जाल में फँसने तथा सच्चे उद्देश्य से डिगने में एक शक्तिशाली अभिरक्षक का काम करते हैं। वे हृदय और मन को सदा उन्नत, अतीव पवित्र और दिव्य चेतनापूर्ण बनाये रखने में अति प्रभावशाली सहायता प्रदान करते हैं। वे व्यक्ति में नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का संचार करते, उसके जीवन को उत्कृष्ट बनाते और अंततः उसे सर्वांगीण पूर्ण जीवन को प्राप्त कराते हैं।

—:o:—

८. स्वाध्याय में सम्मति

प्रश्न : स्वामी जी ! आप मुझे प्रतिदिन कितने घण्टे आध्यात्मिक ग्रंथों के स्वाध्याय की सम्मति देते हैं ?

उत्तर : यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी अपने पाठ्य क्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन में अधिक समय नहीं दे सकते हैं। जबकि

एक सेवा-निवृत्त व्यक्ति स्वाध्याय के लिये सम्भवतः प्रतिदिन छः या सात घण्टे दे सकता है ; आपको भी इस काम के लिये प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे निर्धारित कर लेना चाहिये। हाँ, अवकाश के दिनों में आपको अधिक समय मिल सकता है। इसके अतिरिक्त परीक्षा के दिनों में आपको स्वाध्याय की अधिक चिंता नहीं करनी चाहिये। उन दिनों आप अपनी दैनिक प्रार्थना तक ही अपने कार्यक्रम को सीमित रख सकते हैं। इन सब बातों में आपको सदा ही अपनी सहज बुद्धि का उपयोग करना चाहिये ; क्योंकि आप अपनी परिस्थिति को दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। फिर भी आपको इस मुख्य सिद्धांत पर तो अडिग रहना ही चाहिये कि जीवन को उन्नायक, प्रेरणाप्रद और सुसंस्कारक आध्यात्मिक साहित्य के स्वाध्याय के लिए प्रतिदिन कुछ निश्चित समय अवश्यमेव रखें। निस्संदेह, स्वाध्याय की अवधि में समयानुकूल आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है।

—:o:—

९. उपयुक्त समय

प्रश्न : स्वाध्याय के लिए कौन-सा समय सर्वोत्तम है ?

उत्तर : प्रातःकाल एवं व्यालू के अनंतर रात्रि का समय अध्यात्म ग्रंथों के स्वाध्याय के लिए सर्वो-

त्तम समय है। प्रातःकाल हमारा मन निर्मल और संघर्षमय विचारों से मुक्त रहता है। उस समय हम अपने मन को पाठ्य विषय पर पूर्णतया एकाग्र कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि आप सायंकाल को पढ़ना आरम्भ करेंगे तो उस समय मानसिक धरातल पर आपके दिन भर के जीवन सम्बंधी नाना प्रकार के विचार और चितायें आ उपस्थित होंगी और आप अपने हाथ में ली हुई पुस्तक पर मन को एकाग्र करने में असफल रहेंगे। अतः आप सदैव चार बजे प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठने की आदत डालिए और कुछ प्रार्थना, आसन, प्राणायाम तथा थोड़ा-सा शास्त्र-चितन के साथ दिन आरम्भ कीजिए। हम प्रातःकाल जो कुछ पढ़ेंगे उसका हमारे मन पर इतना गम्भीर प्रभाव पड़ेगा कि हमारे समस्त दिन भर का कार्य उन भव्य विचारों से अनुप्रेरित होगा। इसका सुखद परिणाम यह होगा कि समस्त दिन हमारे लिये ब्रह्ममुहूर्त का रूप ले लेगा। यदि आप रात्रि-शयन से पूर्व (पाठशाला का कार्य समाप्त करने के अनंतर) थोड़ा स्वाध्याय कर लें तो सौम्य विचारों और दिव्य भावनाओं से आपूर्ण मन के साथ निद्रा ले सकेंगे।

—:०:—

१०. रात्रि के अध्ययन का परिहार

प्रश्न : स्वामी जी ! कुछ लोग कहते हैं कि रात्रि में अध्ययन नहीं करना चाहिये ऐसा क्यों ?

उत्तर : हाँ, निम्नाङ्कित कारणों से रात्रि में अध्ययन न करने का परामर्श उचित ही है।

(क) सूर्य-रश्मियों के प्रकाश की अपेक्षा कृत्रिम प्रकाश नेत्रों के लिये हितकर नहीं है।

(ख) तन्द्रा की अवस्था में मन पुस्तक पर भली-भाँति एकाग्र नहीं होता है। रात्रि का प्रारम्भिक प्रहर प्रगाढ़ निद्रा का समय है। उस समय यदि आप पढ़ने बैठेंगे तो इससे आप अपना स्वास्थ्य ही बिगाड़ लेंगे तथा चार बजे प्रातः बहुमूल्य ब्राह्ममुहूर्त्त में साधना के लिये जाग भी नहीं सकेंगे।

(ग) रात्रि के अध्ययन का विषय आपकी निद्रा के लिये स्वप्न के रूप में बाधक हो सकता है। अध्ययन करते समय मन सचेत रहता है जिससे निद्रा नहीं आती है।

(घ) रात्रि के समय मन सद्यः जीवन के सहस्रों विचारों से संतृप्त रहता है, अतः उस समय वह नये विचारों के और अधिक भार को वहन करने और उन्हें सफलतापूर्वक सञ्चित रखने में सक्षम नहीं होता है।

११. सर्वोत्तम स्थान

प्रश्न : आध्यात्मिक ग्रन्थों को कहाँ बैठकर पढ़ना चाहिये ?

उत्तर : सद्ग्रन्थों और शास्त्रों का अध्ययन किसी शुद्ध, पवित्र और शान्त स्थान में ही करना चाहिये। मन्दिर, पावन सरिताओं के तट आदि ऐसे शान्त स्थान हैं जहाँ भौतिक कोलाहल नहीं रहता। वृक्षों की शीतल छाया अथवा कोई अन्य निर्जन स्थान इस प्रकार के अध्ययन के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। मन्दिर जैसे पवित्र स्थान का वातावरण शुद्ध होता है और हमारी विचार-धारा पर लाभदायक प्रभाव डालता है। ऐसे पवित्र स्थानों में बैठने पर हमारा मन अनुचित एवं अपवित्र विचारों से मुक्त रहता है जिससे हम पुस्तक को अच्छी तरह समझ सकते हैं। अपने स्वाध्याय के लिये हम जो स्थान चुनें, वह स्थान, जैसा कि मैंने अभी बतलाया है, नीरव भी होना चाहिये। तभी हम पाठ्य पुस्तक को दत्तचित्त होकर पढ़ सकते हैं और उसके भावों को आत्मसात् कर सकते हैं। निस्सन्देह यह सम्भव नहीं है कि सभी लोगों को सुन्दर स्थान की सुविधा उपलब्ध हो सके। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे अपने मकान के ही किसी एकान्त प्रदेश को अपने स्वाध्याय के लिये चुन लें।

—:०:—

१२. आसन-सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न : स्वामी जी ! आध्यात्मिक साहित्य पढ़ते समय हमें किस आसन में बैठना चाहिये ?

उत्तर : जप और ध्यान के समय आप जिस आसन में बैठा करते हैं स्वाध्याय के समय भी उसी आसन में बैठ सकते हैं। आपको नये आसन में बैठने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि नये आसन में बैठने पर आप अपने अध्ययन में अपने मन को तब तक एकाग्र न कर पायेंगे जब तक कि आपको इस नये आसन में दीर्घकाल तक सुविधापूर्वक बैठने का अभ्यास नहीं हो जाता है।

यदि आप भोजन करने के तुरंत पश्चात् ही पढ़ने बैठते हैं तो आध घण्टे तक वज्रासन में बैठना आपके लिये हितकर होगा; क्योंकि भोजन के अनन्तर शीघ्र ही वज्रासन का अभ्यास पाचन-शक्ति के संवर्धन के लिये सर्वोत्तम है।

इसके अतिरिक्त जप, ध्यान, पूजा, स्वाध्याय आदि में एक ही आसन में सदा बैठते रहने से आप एक ही आसन में दीर्घकाल तक बैठ सकेंगे और इस प्रकार आप सुगमता से और अल्पकाल में ही आसन-जय प्राप्त कर लेंगे।

—:•:—

१३. उचित दृष्टिकोण

प्रश्न : आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन से सर्वाधिक लाभ प्राप्त करने के लिये साधक को क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिये ?

उत्तर : तीन वस्तुयें आवश्यक हैं : श्रद्धा, ग्राहकता और अनुराग। श्रद्धा का होना परम आवश्यक है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक साहित्य का परिशीलन श्रद्धापूर्वक करता है वही इन ग्रन्थों में निहित उच्च भावों और आदर्शों के अनुकूल जीवन व्यतीत करने के लिये प्रयत्नशील होता है। श्रद्धा ही असम्भव को सम्भव बनाती है। श्रद्धा के विना किसी भी आध्यात्मिक ग्रन्थ के स्वाध्याय से पूर्ण लाभ नहीं उठाया जा सकता है। किन्तु आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही, जिन लोगों में आध्यात्मिक विषयों के प्रति पहले पूर्ण श्रद्धा नहीं होती उनमें भी श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। इस भाँति यद्यपि आध्यात्मिक ग्रन्थों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये उपर्युक्त तीनों बातें–श्रद्धा, ग्राहकता और अनुराग–अपेक्षित कही जा सकती हैं, किन्तु वे ऐसी अपरिहार्य नहीं कि उनके अभाव में अध्ययन निरर्थक हो जाय। आध्यात्मिक साहित्य के परिशीलन के परिणामस्वरूप ये गुण प्रायः स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। अतः धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय में उपर्युक्त दृष्टिकोण वाञ्छनीय होते हुये भी जिनमें ऐसा दृष्टिकोण नहीं है उन्हें भी पवित्र और प्रेरक

आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन में संलग्न रहना चाहिये। शनैः शनैः उचित भाव तथा आवश्यक श्रद्धा और अनुराग विकसित हो जायेंगे। क्या आपने यह प्रसिद्ध लोकोक्ति नहीं सुनी है—'जो आक्षेप करने आये, वे प्रार्थना में लग गये।' इसी प्रकार प्रारम्भ में जो लोग आध्यात्मिक ग्रन्थों को कुतूहल अथवा आलोचना की दृष्टि से पढ़ते हैं कुछ समय पश्चात् वे श्रद्धासम्पन्न होकर नित्य स्वाध्याय में लग जाते हैं। आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रभाव ऐसा ही है।

अध्ययन करते समय ग्राहकता का भाव भी बनाये रखना चाहिये। समाचार पत्रों की तरह आध्यात्यिक ग्रन्थों का अध्ययन असावधानीपूर्वक नहीं करना चाहिये। आध्यात्मिक ग्रन्थ पूर्ण अवधान के साथ ही पढ़े जाने चाहिये, क्योंकि इनके अध्ययन का उद्देश्य मनमानी रूप से कालक्षेपण करना मात्र नहीं है, वरञ्च इन उपदेशों को आत्मसात करना और अपने जीवन को तदनुकूल ढालना है।

स्वाध्याय करते समय हमें पुस्तक तथा उसके प्रणेता के प्रति अनुराग तथा सम्मानभाव रखना चाहिये। अन्यथा हमारा अध्ययन शुष्क यान्त्रिक क्रिया, तोते की रट जैसा विकृत हो जायगा। इस प्रकार अध्ययन की गरिमा अनुभव कीजिये। ध्यान रहे कि इससे आप अपने को सम्पन्न बना रहे हैं। तभी आप सर्वाधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

१४. विविध अध्ययन और ध्यान

प्रश्न : स्वामी जी ! क्या यह सच है कि बहुत-सी पुस्तकों का अध्ययन ध्यान में बाधक होता है ?

उत्तर : हाँ, बहुत अधिक पुस्तकों का अध्ययन, और विशेष कर उन पुस्तकों का अध्ययन जिनमें भिन्न-भिन्न विषयों का निरूपण किया गया हो, ध्यान के लिये अनुकूल नहीं है। विविध प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन से साधक का मन अनेकानेक विचारों से आकीर्ण हो जाता है और वे विचार ध्यान के समय पुनः जीवित हो उठते हैं। इससे मनोनिग्रह दुस्साध्य हो जाता है। आपको तो विदित ही है कि ध्यान के लिये एकाग्रता परमावश्यक है। बहुत-सी पुस्तकों का अध्ययन मन को विक्षिप्त बनाता है। अतः सर्वोत्तम बात तो यह होगी कि एक समय में कुछ निश्चित पुस्तकें ही पढ़ी जायं और उनमें दिये हुये उपदेशों को पूर्णतया हृदयङ्गम कर आत्मसात किया जाय।

—:०:—

१५. पूर्णकालिक ध्यान

प्रश्न : साधक को स्वाध्याय का परित्याग कब करना चाहिये ?

उत्तर : जब साधक का मन पूर्णतया अन्तर्मुखी हो गया हो, जब काम, क्रोध, मद, लोभ, भय

आदि की कुवृत्तियां उसके मन को त्रस्त न करती हों उस समय साधक को पुस्तकों का परित्याग कर देना चाहिये। फिर भी स्वाध्याय सहसा कदापि वन्द नहीं करना चाहिये। पहले स्वाध्याय के समय को धीरे-धीरे घटाना चाहिये। उसके पश्चात् साधक को चाहिये कि वह कुछ पुस्तकें चुन ले और उनके उपदेशों को अपने में तत्परता-पूर्वक विकसित करे। अब सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिक वल न देकर अभ्यास पर अधिक बल देना चाहिये। साधक जव अपने निरन्तर प्रयत्नों से उच्चतम आध्यात्मिक शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार ले, जव उसका मन प्रभु में लय हो जाय और सदा उसमें ही लीन रहे तब वह स्वाध्याय विलकुल छोड़ सकता है। ऐसे व्यक्ति के लिये पुस्तकों का उपयोग नहीं रह जाता; क्योंकि उसने उनके उत्कृष्ट तत्त्वों को आत्मसात कर लिया है। ऐसे उच्च साधक को भगवत् साक्षात्कार प्राप्त करने तक अधिकतर ध्यान में ही संलग्न रहना चाहिये।

—:o:—

१६. शिवानन्द की सर्वोत्तम कृति

प्रश्न : स्वामी जी ! गुरुदेव की पुस्तकों में से आप सर्वोत्तम किसे समझते हैं ?

उत्तर : यह कहना तो वड़ा ही कठिन है। यह वात तो कुछ ऐसी है जैसे यदि आपको कई पदार्थ

खाने के लिये दिये जायं जिनमें कुछ तो मीठे हों, कुछ नमकीन हों और कुछ खोये के हों तो आप प्रत्येक प्रकार में से एक-एक चुन लेंगे। परन्तु आप सम्भवतः यह नहीं बता सकेंगे कि उनमें से कोई विशेष पदार्थ ही सर्वोत्तम है। प्रत्येक वस्तु का अपना अलग-अलग मधुर स्वाद है। स्वामी जी की पुस्तकों का भी यही स्वरूप है। इस प्रकार सामान्य रूप से प्रश्न करने की अपेक्षा यदि आप मुझसे यह पूछते कि अमुक विषय पर आपकी सम्मति में गुरुदेव की कौन-सी पुस्तक सर्वोत्तम है तो सम्भव था कि उस पर गुरुदेव द्वारा लिखी हुई अनेकों पुस्तकों में से मैं किसी एक को निर्दिष्ट कर सकता। फिर भी मैं आपको बतलाता हूँ कि गुरुदेव की दो पुस्तकों ने मुझे अधिक आकर्षित किया है। वे हैं आध्यात्मिक शिक्षा (Spiritual Lessons) तथा मन और उसका निग्रह (Mind Its Mysteries and Control)।

—:o:—

१७. महाविद्यालयों में आध्यात्मिक साहित्य

प्रश्न : क्या स्वामी जी की पुस्तकें महाविद्यालय की पाठ्य पुस्तक के रूप में कहीं पर निर्धारित की गई हैं ?

उत्तर : हाँ, तीन पुस्तकें : 'हिन्दू धर्म' (All About Hinduism), 'विश्व के धर्म' (World Religions) तथा 'वेदान्त सार'

(Essence of Vedanta) कैलीफोर्निया के विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकें हैं। दक्षिण भारत के महाविद्यालय में 'जीवन में सफलता के रहस्य' (Sure Ways for Success in Life and God Realisaticn) पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत की गई है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होगी कि गुरुदेव की पुस्तकें और अधिक पाठाशालाओं के पाठ्यक्रमों में निर्धारित की जायें; क्योंकि उनकी कृतियाँ उद्‌बोधक और मानव को देव बनाने वाली हैं। यह सच है कि आजकल विद्यार्थी ईश्वर-विषयक लेखों की अपेक्षा कहानियाँ अधिक पसन्द करते हैं। इस पर स्वामी जी ने 'आध्यात्मिक कहानियां' (Spiritual Stories) 'दार्शनिक कहानियां' (Philosophical Stories) तथा 'दिव्य कथायें' (Divine Stories) आदि पुस्तकें लिखी हैं। इन्हें बालक और बालिकायें बहुत ही पसन्द करते हैं। हमारी शिक्षा-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में ये पुस्तकें रखने योग्य हैं।

—o::—

१८. आधुनिक विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें

प्रश्न : आधुनिक कालेजों के विद्यार्थियों के लिये आप गुरु महाराज की कौन-सी पुस्तकों का अभिस्ताव करते हैं।

उत्तर : मैं तो यही कहूँगा कि कालेज के विद्यार्थियों को स्वामी जी की पुस्तकें अधिक से

अधिक पढ़नी चाहिये। शिवानन्द साहित्य उन्हें भय, क्रोधादि दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करने, दृढ़, मनोबल को विकसित करने तथा जीवन के यथार्थ उद्देश्य को समझने में सहायक होगा। वैसे तो गुरुदेव ने लगभग ३०० पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से विद्यार्थियों को कम-से-कम निम्नाङ्कित पुस्तकें पढ़ने का प्रयास करना चाहिये। इनमें बालक और बालिकाओं के लिये स्वामी जी के उपदेशों का सार है।

१. जीवन में सफलता के रहस्य और भगवत् साक्षात्कार
२. विद्यार्थी जीवन में सफलता
३. ब्रह्मचर्य साधना
४. नैतिक शिक्षा
५. मन और उसका निग्रह
६. आध्यात्मिक पुनरुत्थान
७. प्रेरक सन्देश
८. सद्गुणों के अर्जन और दुर्गुणों के निवारण के उपाय
९. क्रोध पर विजय
१०. भय पर विजय
११. प्राथमिक चिकित्सा
१२. आध्यात्मिक शिक्षावली
१३. शिवानन्द उपदेशामृतम्
१४. विद्यार्थियों के लिये भगवद्गीता
१५. भगवद्गीता की नैतिक शिक्षा

१६. विश्व-शान्ति
१७. विश्व के धर्म
१८. आचरणीय उपदेश

इनमें से कुछ पुस्तकें तो प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी होनी चाहिए। शेष पुस्तकें सामूहिक अध्ययन के लिए रक्खी जा सकती हैं। विद्यार्थियों को अध्ययन-कक्ष स्थापित करने चाहिए। ऐसे अध्ययन-कक्षों को चाहिये कि वे किसी पुस्तकालय से एक पुस्तक निकाल लायें और अपनी पाठमाला की दैनिक बैठकों में क्रमिक रूप से उसे पढ़ें और इस भाँति उस पुस्तक को समाप्त कर डालें। तत्पश्चात् दूसरी पुस्तक प्रारम्भ की जा सकती है। इस भाँति अपने कालेज-जीवन के एक या दो वर्ष में वे अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ-साथ इस प्रकार के आध्यात्मिक अध्ययन से अपने को प्रचुर ज्ञान-सम्पन्न बना सकते हैं।

—:•:—

१६. उपदेश-सम्बन्धी एक आवश्यक प्रश्न

प्रश्न : विद्यार्थियों के लिये गुरुदेव के उपदेशों का सार क्या है ?

उत्तर : यद्यपि मैं विद्यार्थियों तथा युवकों के लिये गुरुदेव के उपदेशों का सम्भवतया सारणीकरण नहीं कर सकूँगा, किंतु मैं आपको उनकी मुख्य-मुख्य शिक्षाओं को बतलाने का अवश्यमेव प्रयत्न करूँगा।

(क) विद्यार्थियों का सर्वप्रथम कर्त्तव्य अपना अध्ययन होना चाहिये ।

(ख) उन्हें अपने माता-पिता, शिक्षक तथा अपने से बड़ों का सम्मान करना चाहिये ।

(ग) उन्हें कुसंगति से बहुत दूर रहना चहिये; क्योंकि मनुष्य अपने मित्रों के अनुरूप ही बन जाता है। कुसंगति में रहने की अपेक्षा एकान्त सेवन श्रेयस्कर है ।

(घ) विद्यार्थियों को आत्म-संयम का अभ्यास करना चाहिये, आत्म-अनुशासन रखना चाहिये और आत्म-विश्वास प्रकट करना चाहिये। ये सद्गुण न केवल उनके कालेज-जीवन में ही लाभदायक होंगे, वरन् उसके पश्चात् भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें फलप्रद होंगे ।

(ङ) विद्यार्थियों को चाहिये कि वे सरल जीवन व्यतीत करें और अपनी उत्कृष्ट राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का यथावत् पालन करें। दूसरों की नकल करना छोड़ दें। यह कितने खेद की बात है कि हमारे छात्रगण अपने पूर्वजों से प्राप्त अपनी भव्य संस्कृति की उपेक्षा कर पाश्चात्य फैशन और जीवनचर्या को अपना रहे हैं।

(च) विद्यार्थियों को चाहिये कि वे निर्धन, बीमार और अशिक्षित लोगों की सेवा करें। इससे उनमें निष्कामता, दया, सहनशक्ति आदि सद्गुणों

का विकास होगा और प्रौढ़ होने पर वे अपने देश के सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे।

(छ) विद्यार्थियों को नियमित तथा समय-निष्ठ होना चाहिये। युवावस्था अत्यन्त मूल्यवान् है, इसे यों ही नष्ट नहीं करना चाहिये।

(ज) विद्यार्थियों को अपने स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके लिये उन्हें चाहिये कि वे सात्त्विक आहार का सेवन करें, आसन और व्यायाम करें तथा खेल में सम्मिलित हों। युवा छात्र और छात्राओं के लिये खेल का मैदान उतना ही आवश्यक है जितना कि अध्ययन-कक्ष। 'काम के समय काम करो, खेल के समय खेलो; क्योंकि आनन्द और सुख का यही मार्ग है।' विद्यार्थियों को नैतिक शुद्धता और ब्रह्मचर्य में संस्थित होना चाहिये।

(झ) छात्रों को सदा भगवान् का स्मरण करना चाहिये। उन्हें नित्य प्रार्थना करनी चाहिये। प्रत्येक कार्य को आरम्भ और समाप्त करते समय भगवान् को स्मरण करना चाहिये।

इससे ऐसा भाव न बना लीजिये कि स्वामी जी विद्यार्थियों के प्रति बहुत ही कठोर हैं। मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, वह प्रायः अन्य लोगों पर भी लागू होता है। स्वामी जी यदि कभी भी पक्ष लेते हैं तो नवयुवकों का ही। उनके प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण तथा उनके कल्याण के विचार से

ही वे उन्हें ये सम्मति देते हैं। अतः उनकी शिक्ष
का अक्षरशः पालन करना आपके लिये स
उचित ही है।

स्वामी जी द्वारा रचित 'अठारह सद्गुण
गीत' कण्ठस्थ कर लीजिये। युवकों के लिये
उपदेशों का सार अल्प शब्दों में ही उपलब्
जायगा।

—:o:—

२०. शिवानन्द और विश्व-शान्ति

प्रश्न : क्या गुरुदेव ने अपने ग्रन्थों में वि
शान्ति पर भी कुछ प्रकाश डाला है? स्वामी जी
शिवानन्द साहित्य ने विश्व-शान्ति के संस्थापन-क
में कहाँ तक योग-दान दिया है ?

उत्तर : हाँ, गुरुदेव ने विश्व-शान्ति और रा
की मैत्री का केवल अपने ग्रन्थों में वर्णन ही न
किया है, वरन् इस विषय पर एक वृहदाक
पुस्तक ही लिख डाली है। पुस्तक का नाम
'विश्व-शान्ति' है। स्वामी जी ऐसी अनेकों संस्था
के निरंतर सम्पर्क में रहे हैं जिनका कार्य ही विश्
शांति स्थापन में सहयोग देना है। स्वामी जी इ
संस्थाओं को अपना असाम्प्रदायिक साहित
निर्मूल्य भेजते रहते हैं और साथ ही विशेष अव
सरों पर अपना प्रेरणादायी संदेश भी भेजते हैं
इस भाँति उनका शांति-संदेश विश्व भर में प्रसा
रित होता है।

आध्यात्मिकता और दिव्य जीवन पर आधारित स्वामी जी का शांति, प्रेम तथा एकता का संदेश यूरोप, जापान तथा उन देशों में विशेष सराहना प्राप्त कर चुका है जिन्हें गत विश्व-युद्ध में भारी क्षति उठानी पड़ी थी। अपने साहित्य द्वारा लोगों को प्रभावित करने के अतिरिक्त वे कभी-कभी उन्हें एक सामान्य मञ्च पर एकत्रित करते हैं जिससे कि उनके पारस्परिक बातचीत से इसकी तथा इसी प्रकार की अन्य समस्याओं का समाधान खोजा जा सके। श्री स्वामी शिवानन्द जी के सभी उपदेश अहिंसा, भ्रातृत्व भावना, विश्व-प्रेम, निष्काम सेवा, करुणा, भलाई और क्षमा के आदर्श पर निरन्तर बल देते हैं। वे ओजपूर्ण शब्दों में धार्मिक जीवन, समता और अखिल मानव जाति में सहयोग के आदर्श का समर्थन करते हैं। इसी भाँति उनके उपदेश शान्ति और सद्भावना का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

—:o:—

२१. भव्य घटना का स्पष्टीकरण

प्रश्न : स्वामी जी ! क्या आप हमें यह बतला सकते हैं कि 'शिवानन्द साहित्योत्सव' से आपका क्या तात्पर्य है ? विश्व-इतिहास में तो यह एक अश्रुत घटना है।

उत्तर : हाँ, यह कह सकना कठिन है कि 'साहित्योत्सव' का विचार सर्वथा नवीन अथवा

मौलिक है। मेरी समझ में इंग्लिस्तान में लोग स्ट्रैटफोर्ड-आन-ऐवान में प्रतिवर्ष उत्सव मनाकर शेक्सपियर को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। कुछ भी हो, 'शिवानन्द साहित्योत्सव' हमारे पूज्य स्वामी जी के जीवन के प्रमुख कार्य के मनाने का एक सुअवसर है और आज विश्व जिस आध्यात्मिक अज्ञानान्धकार से गुजर रहा है उसको देखते हुए इसका एक विशेष महत्वपूर्ण उद्देश्य है। आपको तो विदित ही है कि 'शिवानन्द साहित्य' ने विश्व में एक नवीन जागृति ला दी है। अतः 'शिवानन्द साहित्योत्सव' गुरुदेव के उपदेशों को स्मरण करने तथा उन्हें दूर देशों तक प्रसारित करने का एक उपयुक्त अवसर है। यह गुरुदेव के पावन साहित्य के प्रति, जिसका प्रत्येक शब्द स्वामी जी की शक्ति से स्पन्दित हो रहा है, अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का भी अवसर है। उत्सव के दिनों में हम दूसरे कार्यक्रमों के साथ स्वामी जी के साहित्य की— देश-विदेशों में अब तक प्रकाशित उनकी पुस्तकों और पत्रिकाओं की—प्रदर्शनी की आयोजना करेंगे और सरस्वती पूजा के अवसर पर जैसे हम सामान्य रूप से ग्रन्थों की पूजा करते हैं, उसी भाँति स्वामी जी की पुस्तकों की पूजा करेंगे।

स्वामी जी का सत्साहित्य आधुनिक युग के लोगों के विचार और आदर्श के गठन में विशेष सक्रिय रहा है और अब भी है। इसमें ही इसकी गरिमा और महिमा है। ★

२२. शिवानन्द साहित्योत्सव

प्रश्न : अपने यहाँ पटियाला में मैं इस उत्सव को किस प्रकार भव्य रूप से मना सकता हूँ ? कृपया विस्तृत रूप से मुझे परामर्श दीजिये।

उत्तर : हाँ, यह बहुत ही सुन्दर विचार है। आप इस उत्सव को गुरु पूर्णिमा के दिन मना सकते हैं जिससे कि यहाँ के उत्सव से उसका मेल सध सके। मैं निम्नांकित कार्यक्रम का सुझाव रखता हूँ।

प्रातःकाल चार बजे उठ जाइये। गुरुदेव के चित्र का पूजन कीजिये और कुछ जप कीजिये। तदनन्तर अपने कुछ मित्रों को एकत्रित कर भजन गाते हुए प्रभातफेरी निकालिये। दस बजे के लगभग पड़ोस के लोगों की एक सभा कीजिये और उसमें गुरुदेव के परिपत्रक एवं पुस्तिकायें बाँटिए। भजन गाइए। लोगों को इस उत्सव के महत्व के विषय में समझाइए। दूसरों से भी भाषण दिलवाइए।

अब पूजा कीजिये। स्वामी जी के ग्रन्थों को सुन्दर ढंग से सजा कर रखिये। रामायण और भगवद्गीता आदि पुस्तकों को भी रखिये और पूजा कीजिये। ग्रन्थों के मध्य में स्वामी जी का एक बड़ा चित्र रखिये। पूजा की समाप्ति पर प्रसाद वितरण कीजिये।

दिन में गरीबों को भोजन और दान दीजिये।

सायंकाल को कुछ चुने हुये लोगों को आमन्त्रित

कीजिये। ग्रन्थों की प्रदर्शनी देखने तथा गुरुदेव के ज्ञान यज्ञ के भव्य कार्य के विषय में भाषण सुनने के लिये भद्र लोगों को आमन्त्रित कीजिये। उन्हें पहले से ही निमन्त्रण-पत्र भेजिये। इस समय भी स्वामी जी का साहित्य उनको भेंट कीजिये और वक्ताओं से भाषण करवाइये। सायंकाल का कार्यक्रम आरम्भ करने से पूर्व श्री स्वामी जी का इस अवसर पर भेजा हुआ सन्देश और कार्यक्रम-तालिका वितरण कीजिये। इस भांति आप इस उत्सव को सुन्दर ढंग से मना सकते हैं।

मैं आपकी सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

—:o:—

२३. ज्ञान यज्ञ का महत्व

प्रश्न : सब प्रकार के यज्ञों में ज्ञान यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ क्यों माना जाता है ?

उत्तर : जब आप दूकान में जाते हैं तो फ्रांस अथवा जापान की वस्तु उपलब्ध होने पर भी आप जर्मनी की ही वस्तु क्यों पसन्द करते हैं ? यह इसलिये कि आप जानते हैं कि जर्मनी की वस्तु आपको अधिक समय तक काम देगी। इसके विपरीत दूसरे देशों की वस्तुयें किसी भी समय बिगड़ सकती हैं। दूसरे शब्दों में जर्मनी की वस्तुयें फ्रांस और जापान की वस्तुओं की अपेक्षा अधिक टिकाऊ होती हैं। यह स्वाभाविक है कि आप अस्थाई वस्तु

की अपेक्षा चिरस्थाई वस्तु को अधिक पसन्द करते हैं।

इसी भाँति विविध प्रकार के यज्ञ, विविध प्रकार के दान होते हैं। हम विभिन्न उपायों से जनता की सेवा करते हैं। हम निर्धनों को पैसे देते हैं, उन्हें भोजन खिलाते हैं, उन्हें पहनने के लिये वस्त्र प्रदान करते हैं। हम उन्हें औषधि देते तथा उनकी सुश्रूषा करते हैं। यह सब हम उनके भौतिक शरीर के लिये करते हैं। कुछ ही वर्षों में यह शरीर राख का ढेर बन जाता है और जिनकी हमने सेवा की है वे पुनः जन्म लेकर जन्म-मरण के चक्कर का दुःख भोगते हैं। हमारी सेवायें अल्प-काल के लिये किसी जन्म-विशेष तक ही सीमित रहती हैं।

ज्ञान यज्ञ का आधार दूसरा ही है। आप जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान देते हैं, वह इस ज्ञान को प्राप्त कर ईश-दर्शन का प्रयत्न करता है और उसके सुपरिणामस्वरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मोक्ष की प्राप्ति से उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। फिर उसे किसी वस्तु की कामना नहीं रह जाती है। यही कारण है कि ज्ञान यज्ञ सर्वोत्तम यज्ञ माना गया है। आध्यात्मिक ज्ञान आत्मा का आहार है जो कि चिरस्थायी है। अन्न दान आदि केवल शरीर का पोषण करते हैं और शरीर नाश-वान् है। अन्य सभी दान मनुष्य के नित्य परिवर्तन-शील एवं नाशवान् तत्त्व तक ही पहुँच पाते हैं,

किन्तु उच्च आध्यात्मिक दान उसके अन्तर्पुरुष को अन्तरात्मा को, पहुँचता है जिसका फल चिरस्थायी होता है। ज्ञान यज्ञ का फल अविनाशी है।

—:०:—

२४. स्वामी जी की लेखन-क्षमता

प्रश्न : स्वामी जी ! अभी आपने कहा और दूसरे व्यक्ति भी कहते हैं कि गुरुदेव ने लगभग ३०० पुस्तकें लिखी हैं। स्वामी जी ! क्या एक व्यक्ति के लिये इतनी पुस्तकें लिख सकना सम्भव हो सकता है ? गुरुदेव की क्षमता के विषय में अपने मन में इस प्रकार सन्देह को प्रश्रय देने के लिये कृपया मुझे क्षमा करें। मैं समझ नहीं सका हूँ, इसी से मैंने आपसे यह प्रश्न किया।

उत्तर : यह सच है कि गुरु महाराज ने ३०० पुस्तकें लिखी हैं। एक बार गुरुदेव से इस विषय में मेरी वार्ता हुई थी। उन्होंने बतलाया कि इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उनका कहना था कि गत तीस वर्षों से वे निरन्तर लिखते चले आ रहे हैं। उनका नित्य का लिखने का एक समय निश्चित है और उस समय वे अवश्य लिखते हैं। दूसरे वे एक असाधारण आशु लेखक हैं। उनकी वाणी अलौकिक और आश्चर्यमयी है। वे लिखने बैठते हैं तो उनकी लेखनी प्रेरणा से स्वतः चलने लगती है। हम लोगों की तरह उन्हें विचारों की प्रतीक्षा नहीं करनी होती। इस भाँति वे वर्ष में लगभग

दस पुस्तकें लिख लेते हैं। निस्सन्देह हम लोग ऐसा नहीं कर सकते हैं। ईश्वरीय कृपा सदा गुरु महाराज के साथ है। उनकी उपलब्धियों को देखते हुए 'शिवानन्द साहित्य' की नैरन्तर्य प्रवहणशीलता में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आशा है कि अब आपका सन्देह दूर हो गया होगा।

—:०:—

२५. आध्यात्मिक ग्रन्थों की आवश्यकता

प्रश्न : स्वामी जी! मुझे केवल एक प्रश्न और पूछना है। कृपया आप मुझे गलत न समझें। मेरा सन्देह यथार्थ है। क्या आप बतला सकते हैं कि स्वामी जी को इतना साहित्य लिखने की क्या आवश्यकता थी?

उत्तर : हाँ, मैं आपका संशय निवृत्त करूँगा। आप जानते हैं कि इस संसार में कोई भी दो व्यक्ति एक समान नहीं हैं। यदि संसार में करोड़ों पुरुष, स्त्रियां और बच्चे हैं तो करोड़ों ही उनकी प्रकृतियां और आवश्यकतायें भी हैं। प्रत्येक साधक की अपनी शंकायें होती हैं। प्रत्येक साधक की अपनी रुचि होती है। प्रत्येक साधक की भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें होती हैं जिनकी पूर्त्ति करना होता है। सभी लोगों की चितायें, संताप और भय एक समान नहीं हुआ करते। हमारे गुरुदेव के जीवन का उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष को ही सन्तुष्ट करना नहीं है, बल्कि सबको सन्तुष्ट करना है। गुरुदेव विश्वप्रेम से ओत-प्रोत हैं। विश्व-प्रेम का अर्थ है

सबसे प्रेम। वे प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करना चाहते हैं। देखो, उन्होंने कितने प्रकार के ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ के लिये, सामान्य व्यक्ति तथा पथ-भ्रष्ट के लिये पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने स्त्रियों और बालकों के लिए लिखी हैं। उन्होंने पाश्चात्य देशों के लिये भी विशेष रूप से पुस्तकें लिखी हैं जैसे 'पाश्चात्य देशों के लिये योग' (Yoga for the West) आदि। जो धनवान् बनना चाहते हैं उनके लिये 'धनवान् बनने की कला' (How to Become Rich) नामक पुस्तक लिखी है। जो अपनी प्रकृति को नियन्त्रित नहीं रख सकते उनके लिये 'क्रोध पर विजय' (How to Control Anger) पुस्तक वरदान सिद्ध होगी। शारीरिक रोग से पीड़ित लोगों के लिये 'कोष्ठबद्धता' (Constipation), 'रक्तचाप' (Blood Pressure), 'मधुमेह' (Diabetes) आदि पुस्तकें लिखी हैं। गुरुदेव ने अपने साहित्य के माध्यम से सभी सम्भाव्य उपायों द्वारा इतने लोगों की सहायता करने का प्रयास किया है जितना कि सम्भव हो सकता है। उन्होंने पूर्णकालिक साधकों के लिये विशाल ग्रन्थ तथा कार्यालयों में काम करने वाले व्यस्त लोगों के लिये छोटी-छोटी पुस्तिकायें लिखी हैं। मैं इसी प्रकार अन्य कारण भी उपस्थित कर सकता हूँ, किन्तु मुझे आशा है कि इतने से ही आपका सन्देह दूर हो गया होगा।

—:o:—